

प्रभाती शुपा छुंगलू ने
दी। उसी ओपरार्टर का
फोटो स्टेट स्टेट है। ॥
२३.४.०९
कॉल नं

कश्मीरी

ललूद्यद्

(नागरी लिप्यन्तरण-सहित हिन्दी अनुवाद)

अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार

डॉ० शिवनकृष्ण रैणा

संस्कृत अनुवाद

आचार्य श्री रामजी शास्त्री

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

वर्तमान पत्र ... मौसम वाणी (सीतापुर रोड), लख ऊ-२२६०२०

N. Ram - L. Ram - T. Ram



‘प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥’

प्रथम संस्करण— जुलाई, १९७७ ई०

पृष्ठसंख्या— $15 \times 22 \div 5 = 120$

मूल्य— १५.०० रुपया

मुद्रक

शाणी श्रेस्त

‘प्रभाकर निलयम्’, ४०५/१२८, चौपटिया रोड, लखनऊ—२२६००३

भूमिका

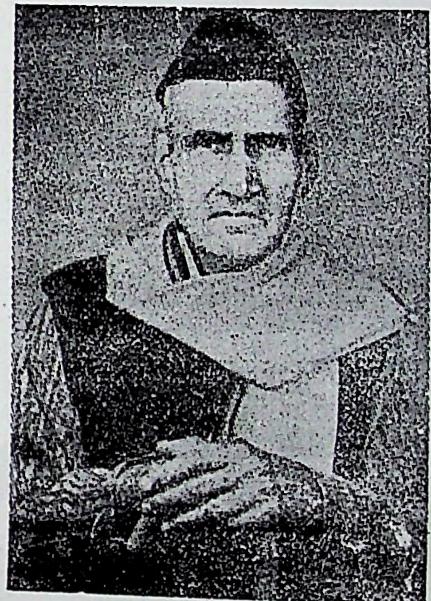
एक दिन लखनऊ से भेजा गया एक पत्र मुझे मिला, जिसका सारांश यह था ‘मैं कोटद्वार होते हुए दिल्ली जाना चाहता हूँ, ताकि आपसे मिल सकूँ।’ प्रेषक थे श्रीयुत नन्दकुमार अवस्थी, जिनके शुभ नाम तथा महत्वपूर्ण काम से मैं तब तक बिल्कुल अपरिचित ही था। और मैंने यह लिखकर उन्हें रोकने का प्रयत्न किया कि लखनऊ से तो दिल्ली का सीधा रास्ता है, व्यर्थ ही अपव्यय क्यों करते हैं; पर वे नहीं माने और अपने एक सहयोगी के साथ कोटद्वार पधारे।

श्री नन्दकुमार अवस्थी जी से मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई, पर साथ-साथ लज्जा का भी अनुभव हुआ कि उनकी अद्भुत सेवाओं से मैं अब तक क्यों अपरिचित रहा?

जब श्री अवस्थी जी ने ढाई सौ रुपये के मूल्य के १४ ग्रन्थ मुझे भेंट किये तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने उनसे निवेदन भी किया कि उनके ग्रन्थ मैं किसी पुस्तकालय से खरिदवा दूँगा, पर वे नहीं माने और केवल इतना ही कहा—“यदि आप अपने पास आने वालों को यह ग्रन्थ दिखला दिया करें, तो मेरे लिए यहाँ पर्याप्त होगा।”

तब से मैं उनके उस आदेश का पालन करता रहा हूँ और नहीं यह हुआ कि मेरे यहाँ पधारने वाले अनेक व्यक्ति भी मेरी तरह श्री अवस्थी जी के प्रशंसक बन गये हैं।

हमारा देश बड़ा विस्तृत है और उसमें अनेक भाषाओं के बोलने वाले व्यक्ति रहते हैं। उनमें पारस्परिक विचार-परिवर्तन के लिए किसी सम्पर्क भाषा की ज़रूरत थी और हिन्दी को वह गौरवपूर्ण स्थान मिल भी रहा है, पर उससे भी अधिक उपयोगी कार्य है समान लिपि का होना। जस्टिस शारदाचरण मित्र ने बहुत वर्षों पहले इसके महत्व को ममता



श्री अवस्थी के सम्पादकत्व में 'वाणीसरोवर' नैमासिक पत्र प्रकाशित यक्ति हैं। जो इतनी लम्बी वर्धितक एक पुनीत कार्य में निस्पृह लगे होता है। इसमें उपर्युक्त ग्रन्थों में से अनेक के ८-८ पृष्ठ धारावाहिक छपते हैं। हर्ष की बात है कि जनता तथा सरकार भी धीरे-धीरे उनके दिये जाते हैं। हिन्दी के अनुपम ग्रन्थ 'रामचरितमानस' के मूलपाठ एक कार्य के महत्व को समझने लगी है। सन् १९७५ ई० में नागपुर विश्व अनुवाद सहित ओडिया, बंगला और संस्कृत संस्करण भी प्रकाशित हो। हिन्दी सम्मेलन में उनको सम्मानित किया गया और भारत सरकार ने रहे हैं। सम्प्रति श्री अवस्थी कौरानिक कोश (पठनक्रम), कौरानिक १९७६ ई० में उन्हें पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया था। पर यह कोश (वर्णनिक्रम), और एक बहुत नागरी उर्दू हिन्दी कोश की तैयारी में रहे हैं। इन कोशों में अरबी-फारसी के संदेहपरक (मुश्तबहुस्सौत) अक्षरों को नागरी लिपि में प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे सीन, से, साद और जीम, जाल, जे, ज्ञाद, जो; इनको पृथक व्यक्त न करने से शब्दों के अर्थ का अर्नथ अथवा विपरीत अर्थ निश्चित है।

कुर्यान शरीफ, गुरुग्रन्थ साहिब, रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों का ही सानुवाद लिप्यन्तरण क्यों? इसके समाधान में श्री अवस्थी का कथन है कि मानव को श्रेष्ठमानव बनाने, सदाचार प्रदान करने, मानव मात्र में पार्थक्य (विलगाव) की भावना को दूर कर विश्वबन्धुत्व की सद्भावना को जगाने में ये ग्रन्थ ही सर्वथ हैं। इस प्रकार के पूज्य ग्रन्थों को जनता अपने द्रव्य से खरीदकर, श्रद्धा से और अनेक बार पढ़ती और उनसे प्रेरणा लेते नहीं थकती है। फिर, कथानक सुपरिचित होने और अपनी सुपरिचित लिपि में प्राप्त होने पर संस्कृत के तत्सम-तद्भव तथा यद्र-तत्त्व तैरकर पहुँचनेवाले क्षेत्रीय शब्दों की सहायता से दूसरी भाषाएँ भी सरलता से बोधगम्य होती हैं। विना कटुता और स्पर्धा के राष्ट्रभाषा तथा क्षेत्रीय भाषाओं की समान उन्नति और विस्तार, एवं लिपि और भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय-एकीकरण, इन जाने-सन्माने शाश्वत ग्रन्थों के बल पर ही सम्भव है।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस महान यज्ञ के मार्ग में उत्तरे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा, जिनमें आर्थिक कठिनाइयाँ मुख्य थीं। इसमें केवल उन्हें ही नहीं, उनके घर वालों को भी बहुत परेशानी उठानी पड़ी। फिर भी कुछ सहायक मिलते रहे और उनके सहयोग से मिशनरी कार्य अब भी चल रहा है।

श्री अवस्थी जी में कृतज्ञता की भावना भरपूर मात्रा में पाई जाती है और वे अपने प्रति उपकार करनेवालों को भूलते नहीं। उन्होंने स्वयं बन्धुवर श्रीनारायण जी चतुर्वेदी, प्रमुख उद्योगपति शेरवानी साहब तथा श्री जयदयाल जी डालमिया की सहायता का उल्लेख बातचीत के सिल-सिले में कई बार किया।

जो कार्य अकेले श्री अवस्थी जी ने कर दिखाया है उसे कोई साधन-सम्पन्न संस्था भी मुश्किल से कर सकती थी। आज के युग में देश में कितने

वर्धितक एक पुनीत कार्य में निस्पृह लगे हैं! हर्ष की बात है कि जनता तथा सरकार भी धीरे-धीरे उनके हिन्दी सम्मेलन में उनको सम्मानित किया गया और भारत सरकार ने रहे हैं। हिन्दी सम्मेलन में उन्हें पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया था। पर यह पद्मित्र कार्य बहुत मन्द गति से हो रहा है। कम से कम हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों का यह कर्तव्य था कि वे अवस्थी जी को प्रचुर आर्थिक सहायता देते और केन्द्रीय सरकार का भी यही कर्तव्य है। साहित्य जगत में भी वे सर्वोच्च सम्मान के अधिकारी हैं।

भविष्य में जो कार्य श्री अवस्थी जी करना चाहते हैं उनकी चर्चा तो यह हुई। अब इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए प्रचुर साधन भी चाहिये। यह कोई विवाद-ग्रस्त ग्रन्थ तो हैं नहीं, और सभी जातियों तथा धर्मों के मनुष्य और सभी राजनैतिक दल इसमें सहायक हो सकते हैं। यह जानकर हमें आश्चर्य हुआ कि कुर्यान के सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण की प्रतियाँ हिन्दी-भाषा-भाषियों की अपेक्षा अहिन्दी-भाषा-भाषियों में कहीं अधिक बिकीं।

श्री अवस्थी जी की संस्था 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के सम्पूर्ण कार्य की अधिकारपूर्ण समीक्षा तो अनेक भाषाओं के विद्वान् ही कर सकते हैं और यह काम हमारे बूते का नहीं।

सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक एमर्सन का कथन है— "संस्थाएँ तो मनुष्य की विस्तृत छाया मात्र होती है" (An institution is the lengthened shadow of a man.); और इस प्रकार भुवन वाणी ट्रस्ट भी श्रीनन्दकुमार अवस्थी के प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाया मात्र है।

अभी लगभग एक मास पूर्व अवस्थी जी का पत्र आया जिसमें ट्रस्ट द्वारा नव प्रकाशित कश्मीरी भाषा की 'लल् द्यद' पर भूमिका लिखने का अनुरोध था। किसी पुस्तक की भूमिका लिखते समय प्रतिपाद्य विषय वह पुस्तक ही होती है। मुझे कश्मीरी भाषा का जान नहीं है, इसलिए मैंने युवराज डॉ० कर्णसिंह जी अथवा अन्य दो-एक कश्मीरी भाषा के विद्वानों से भूमिका लिखने के लिए पत्र लिखना चाहा। किन्तु श्री अवस्थी ने पुनः अनुरोध किया कि भुवन वाणी ट्रस्ट के मिशन में भूमिका का प्रतिपाद्य विषय पुस्तक-विशेष नहीं है। प्रतिपाद्य विषय तो भाषाई सेतुकरण का उद्देश्य और उसकी पूर्ति के लिए किया जा रहा कार्य है।

लिया था, पर वे उसे कार्यरूप में अधिक आगे बढ़ा नहीं सके। भाषाई सेतुबन्धन का यह पवित्र कार्य श्री नन्दकुमार अवस्थी जी ने सफलतापूर्वक किया है और उन्हें 'सांस्कृतिक इंजीनियर' की उपाधि दी जा सकती है।

मध्यम श्रेणी का यह परिवार आजादी की लड़ाई के फल-स्वरूप वस्त रहा। सन् ४२ में उत्तरप्रदेश और विहार के क्रान्तिकारियों का इनके यहाँ नित्य का जमघट रहा। श्री अवस्थी के छोटे भाई श्री कृष्णकुमार अवस्थी (इस समय आयुर्वेदाचार्य बी. आई. एम. एस.) अपनी १६ वर्ष की अवस्था में ही डी. आई. आर. में जेल भेज दिये गये। ये स्व० श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के विश्वस्थ अनुयायी थे। अन्त में आम्स एकट में इनको सजा हुई।

आजादी प्राप्त होने के बाद श्री अवस्थी ने लेखन-प्रकाशन का सफलता से काम चलाया। किन्तु सन् १९४७ से ही जन्मजात स्वभाव-वश भाषाई-सेतुबन्धन के राष्ट्रीय कार्य में लग गये और निजी प्रकाशन का काम धीरे-धीरे छोपट हो गया। बंगला कृत्तिवास रामायण और कुर्गान शरीफ के सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण को पहले हाथ में लिया। अरबी कुर्गान की विशिष्ट धनियों और शास्त्रीय पद्धति की नजाकतों के जटिल काम को नागरी लिपि में उतारने, उन अक्षरों और चिह्नों को गढ़ने और फिर ग्रन्थ को छापने में २० वर्ष लगे। यह लगभग एक पीढ़ी का समय है, जिसमें व्यक्ति कार्यक्षेत्र से प्रायः अवकाश प्राप्त कर लेता है। इस बीस वर्ष के कार्यकाल में आय का स्रोत बन्द हो जाने से श्री अवस्थी सपरिवार दयनीय आर्थिक संकट से गुज़रते रहे। किन्तु उनकी अनन्य निष्ठा और लगन ने कार्य को सर्वांग सफलता प्रदान की। कुर्गान के अरबी पाठ को किसी अन्य लिपि में लिप्यन्तरित करना इस्लामी धर्मशास्त्र को मान्य नहीं, और उनके पास इसके पक्ष में उचित आधार हैं। किन्तु श्री अवस्थी ने जिस ईमानदारी, अनन्यता और परिपूर्णता से इस कार्य को प्रस्तुत किया, उसके परिणाम-स्वरूप इस्लामी धर्मचार्यों और हिन्दी-अहिन्दी-भाषी समग्र जनता ने इस महत्वपूर्ण कार्य को आशातीत सम्मान प्रदान किया।

इस अपूर्व स्वागत से प्रोत्साहित होकर अब अवकाश लेने के बजाय, उन्होंने १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' (पञ्जीकृत) की स्थापना करके विश्व की, और प्रमुखतः भारतीय भाषाओं के सत्साहित्य को नागरी लिपि में सानुवाद प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया। और आज इस अल्प अवधि में विविध भाषाविदों के सहयोग से इतना विशाल सत्साहित्य जनता के सामने प्रस्तुत कर दिया है जो सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं में भी अन्यत उपलब्ध नहीं है। श्री अवस्थी निजी सारे साधनों को ट्रस्ट हेतु अपेण करके, इस ७० वर्ष

की आय में भी अहनिश्च भाषाई-सेतुबन्धन के पुनीत कार्य में अवैतनिक लगे हुए हैं। उनके सामान्य जीवन-निर्वाह का भार भी ट्रस्ट पर नहीं है। उल्लेखनीय है कि श्री अवस्थी के एकमात्र पुत्र चिरञ्जीव विनयकुमार अवस्थी उनके, एवं ट्रस्ट के कार्यों में पूरा सहयोग दे रहे हैं। अरबी, बंगला, असमिया, उर्दू, मलयालम और तमिल के नागरी लिप्यन्तरण में उन्होंने पर्याप्त कुशलता प्राप्त की है। ट्रस्ट की एक विद्वत्परिषद् है, और उसको अनेक भाषाविदों का अनन्य सहयोग प्राप्त है।

अभी तक जो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, और जो यन्त्रसंग्रह हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

ट्रस्ट की स्थापना से पूर्व (अरबी) कुर्गान शरीफ—श्री अवस्थी की निजी आय का साधन, और (बंगला) कृत्तिवास रामायण (ट्रस्ट को समर्पित); तथा ट्रस्ट के कार्यकाल में (मलयालम) महाभारत, (कन्नड) रामचन्द्र चरित पुराण जैन सम्प्रदाय, (कश्मीरी) रामावतार चरित, (कश्मीरी) लल दयद, (नेपाली) भानुभक्त रामायण, (राजस्थानी) रुक्मणी मंगल, (मराठी) श्री रामविजय, (तमिल) तिरुक्कुरल, (अरबी) हदीस जादे सफ़र, (उर्दू) शरीफजादः, (तेलुगु) मोत्त्व रामायण, (फारसी) सिर० अकबर—दाराशिकोह कृत उपनिषद्-भाष्य प्रथम खण्ड, (गुरमुखी) श्री जपुजी सुखमनी साहब।

उपर्युक्त सम्पूर्ण हो चुके ग्रन्थों के अतिरिक्त, निम्न ग्रन्थों का मुद्रण-प्रकाशन चल रहा है:—

(तमिल) कम्ब रामायण, (बंगला) कृत्तिवास रामायण उत्तरकाण्ड, (मलयालम) अध्यात्म रामायण, (गुजराती) गिरधर रामायण, (मराठी) श्री हरिविजय, (असमिया) माधव कंदली रामायण, (तेलुगु) रंगनाथ रामायण, (तेलुगु) पौत्र श्री हरिविजय, (ओडिया) बैदेहीश विलास, (सिन्धी) स्वामी, शाह, सचल की विवेणी, (उर्दू) गुजरातः लखनऊ, (फारसी) सिर० अकबर २, ३ खण्ड, और (गुरमुखी) श्री गुरुग्रन्थ साहिब का वृहद धर्मग्रन्थ। ध्यान रखने की बात है कि इन सभी ग्रन्थों में यथावश्यकता अनुवाद के अतिरिक्त, नागरी लिपि में मूलपाठ भी दिया जाया है; और प्रायः ये सभी ग्रन्थ विशाल हैं। विविध भाषाओं के विशिष्ट स्वर-व्यञ्जन, जो नागरी लिपि में अनुपलब्ध हैं, उनको सुपरिचित ढंग पर गढ़ कर परिवर्द्धित नागरी लिपि में सम्मिलित किया गया है। यह साधन देश में अन्यत्र किसी प्रेस में उपलब्ध नहीं है; और इसका सारा श्रेय श्री अवस्थी जी को है।

अवस्थी जी की बात में बल था । मैंने भूमिका लिखना स्वीकार कर लिया । उसी के फलस्वरूप भूवन वाणी ट्रस्ट और उसके प्रतिष्ठाता श्री नन्दकुमार अवस्थी के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवरण, जानकारी के अनुरूप मैंने प्रस्तुत किया है । वैसे, पवित्र उद्देश्य, संकल्प, धर्म और उपलब्धि की दृष्टि से उनकी जितनी सराहना की जाय, कम है । जहाँ तक 'लल् द्यद' की पुस्तक का सम्बन्ध है, प्रकाशकीय परिशिष्ट और अनुवादक महोदय के वक्तव्यों में पर्याप्त सामग्री मौजूद है । पुस्तक में दार्शनिक कवयित्री लल के १७९ वाक्यों का नागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी गद्यानुवाद, और संस्कृत पद्यानुवाद दिया गया है । कश्मीरी भाषा की मौजूदा लिपि फ़ारसी है । किन्तु स्वरों के उच्चारण और प्रयत्नों में कश्मीरी भाषा के कुछ अपने रूप हैं । एक वर्णमाला चार्ट है जिसमें कश्मीरी लिपि के अक्षरों तथा उसकी विशिष्ट आ'रब (मात्राओं) को नागरी लिपि में प्रस्तुत करते हुए, उनके विशिष्ट उच्चारण पर भी प्रकाश डाला गया है । अनुवाद के साथ मिलान करने पर स्पष्ट पता चलता है कि अधिकांश शब्दों का मूल उद्गम संस्कृत भाषा ही है । अलबत्ता कालान्तर में फ़ारसी-अरबी शब्दों का सन्निवेश होता रहा है । भूमिका का प्रतिपाद्य विषय भूवन वाणी ट्रस्ट और श्री अवस्थी का कार्यकलाप है । प्रस्तुत पुस्तक 'लल् द्यद' उस कार्य-समूह की एक हकाई माना है ।

अन्त में श्री अवस्थी और भूवन वाणी ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे पुनीत वाणीयज्ञ की उत्तरोत्तर सर्वाङ्ग सफलता की कामना करता हूँ ।

उन्होंने घर बैठे मुझे अपने दर्शन दिये तदर्थ मैं उनका बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ ।

बनारसी दास

[डॉ० बनारसीदास चतुर्वेदी (पद्मभूषण)]

कोटद्वारा, गढ़वाल

दिनांक २३ मार्च, १९७७

लल् द्यद

गगन चुय भूतल चुय
चुय द्यन पवन तु राथ,
अरुग चंदन पोश पोन्य चुय
चुय छुख सकलय तु लाम्यजि क्याह

(तू ही गगन है, तू ही भूतल है । तू ही दिन, पवन और रात है । अर्ध्य, चंदन, पुष्प पानी भी तू ही है । तू ही सब कुछ है तो फिर (हे देव !) तुझे क्या चढ़ाऊँ ? —लल् द्यद ।

कश्मीर की दार्शनिक
आदि - कवयित्री लल् द्यद
(सुश्री लल्लेश्वरी) के वाखों (वाक्यों)
का यह सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण
उसी देवी की पुण्य स्मृति में
भगवदर्पण ।

८८४३८८५४५५५५

मुख्यन्यासी सभापति
भूवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

विषय-सूची

विषय	पृष्ठसंख्या
भूमिका—डॉ० बनारसी दास चतुर्वेदी (पद्मभूषण)	क-च
समर्पण	१
विषय-सूची	२
प्रकाशकीय परिशिष्ट	३
अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार का प्राककथन	९
लल् द्यद : जीवन और कृतित्व	११
कश्मीरी देवनागरी वर्णमाला चार्ट	२३
लल् द्यद — वाख (वाक्य-) संग्रह	२५

प्रकाशकीय परिशिष्ट

विषय-प्रवेश—

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, राष्ट्र के विधान की रचना हुई। उसमें मनीषियों ने राष्ट्र की व्यवस्था में, भाषा और लिपि के संबंध में भी निर्णय लिया। भारत जैसे विशाल देश के विभिन्न अञ्चलों में विभिन्न भाषाओं और लिपियों का प्रचलन है। वे सभी भाषाएँ बहुमूल्य साहित्य से संपन्न हैं, और उस समग्र साहित्य में एक-भारतीय और एक-मानवीय झलक है। भाषा समझने की कोई बड़ी कठिनाई नहीं है। प्रायः सबमें संस्कृत का प्रचुर शब्द-भण्डार, तत्सम अथवा तद्भव रूप में विद्यमान है। अँग्रेजी तथा अरबी और फ़ारसी के शब्द भी पर्याप्त संख्या में समान रूप से सभी भाषाओं में पैठ चुके हैं। गुरुमुखी, सिन्धी आदि प्राचीन साहित्य को आज के वहाँ के निवासियों की अपेक्षा, हिन्दीभाषी अधिक सरलता से समझ सकते हैं। सभी भाषाओं के क्षेत्रीय शब्द यातायात, एक-राष्ट्रीयता और एक-संस्कृति होने के फलस्वरूप आपस में घुल-मिल गये हैं। यह भी तथ्य ही है कि देश के किसी भी अञ्चल में जाने पर टूटी-फूटी हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा की मिली-जुली बोली से काम, आज ही नहीं, पुरातन से चलता आ रहा है। अलबत्ता लिपि की कठिनाई ज़रूर है। यह किसी व्यक्ति के वश की बात नहीं कि वह भारत में व्यवहृत २०-२२ लिपियों को सीख ले और तब उन सभी लिपियों से सम्बन्धित भाषाओं के वाड़मय और सत्साहित्य से लाभान्वित हो सके, अथवा भाषा के सेतु द्वारा परस्पर घुल-मिल सके।

इसलिए विचारक-वृन्द सदैव इस पर एकमत रहा है कि इन सब भाषाओं को एक सूत्र में बांधने के लिए एक जोड़लिपि को अपनाया जाय और उसके लिए देवनागरी लिपि ही अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त है। सारांश यह कि सारी लिपियों के सदैव फूलते-फलते रहने के अलावा, देवनागरी लिपि को भी, जोड़लिपि के तौर पर, अपनाया जाय; सभी भाषाओं के सत्साहित्य को नागरी लिपि में लिप्यन्तरित किया जाय। राष्ट्रीय एकीकरण को अक्षुण्ण रखने के लिए राष्ट्र की सभी भाषाओं का पवित्र साहित्य समस्त देश की सम्पत्ति बन जाय। यह जोड़लिपि का काम किसी समय ब्राह्मी लिपि द्वारा उपलब्ध था; आज आवश्यकता है कि नागरीलिपि को उस पुनीत उद्देश्य के लिए अपनाया जाय।

अस्तु। यह विचार मेरे मस्तिष्क में घूम रहे थे। राष्ट्रीय विधान

में भी उसी दिशा में निर्णय लिया गया। सन् १९४७ ई० से मैंने अन्य भाषाओं के देवनागरी लिप्यन्तरण का कार्य आरंभ किया। संयोग की बात कि विश्वविद्यात इस्लामी धर्मग्रन्थ 'कुअनि' का सानुवाद लिप्यन्तरण प्रस्तुत करने की प्रथम अभिलाषा हुई। काम आरम्भ करने के बाद वह अनुमान से कहीं अधिक जटिल साबित हुआ। वैसे तो भारतीय भाषाओं के ही कई व्यञ्जनों और स्वरों के प्रतिनिधि रूपों का नागरी में अभाव है; किन्तु अरबी लिपि की तो अनेक द्वन्द्वियों के समावेश से नागरी लिपि को परिवर्द्धित करने की आवश्यकता सामने आई। धर्मग्रन्थ होने के नाते अनेक शास्त्रीय बातों का भी ध्यान रखना ज़रूरी था। किसी न किसी प्रकार भगवान् की कृपा से वह भगीरथ कार्य सन् १९६९ ई० के आरम्भ में प्रकाशित होकर जनता के सामने आया। परिश्रम ठिकाने से लगा। देश की हर जमात ने उस श्रम की सराहना की, सब ने क़द्र की। इसी बीच गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस से एक शती प्राचीन बंगला की लोकप्रिय 'कृत्तिवासी रामायण' के पाँच काण्डों का देवनागरी लिप्यन्तरण और (अवधी) हिन्दी में पद्यानुवाद भी मैंने प्रस्तुत किया।

इस २०-२२ वर्ष के सतत और क्लेशकर श्रम के उपरान्त, कुछ विश्राम मिला, यश मिला, सराहना मिली। विद्वान् और आम जनता, सर्वत्र इस श्रम के प्रति उपलब्ध समादर से उत्साह में वृद्धि हुई। फल-स्वरूप भाषाई सेतुकरण, एक भाषा का दूसरी भाषा में प्रतिविम्बीकरण, और राष्ट्रसमन्वय के उपर्युक्त पुनीत उद्देश्य के प्रति संकल्प प्रबलतर हो उठा। कुछ महीनों बाद ही, उसी १९६९ ई० में 'भवन वाणी ट्रस्ट' नामक पञ्जीकृत संस्था की स्थापना की। नागरी लिपि में परिवर्द्धन और देश में प्रचलित प्रायः सभी भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण का कार्य आरम्भ हुआ। ट्रस्ट का यह प्रयास देश में अद्वितीय है। देशी-विदेशी भाषाओं के अनेक ग्रन्थों का सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित हुआ। उसी योजना में कश्मीरी भाषा की यह दूसरी पुस्तक 'लल् द्यद' आज पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

लल् द्यद—

विभिन्न भाषाओं के सद्ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित करने की योजना में, गत १९७५ ई० में कश्मीरी भाषा का श्री प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत 'रामावतार चरित' प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के मुद्रणकाल में ही, उसके अनुवादक और लिप्यन्तरणकार डॉ शिवनकृष्ण रेणा ने कश्मीर की आदि कवयित्री, परमहंस देवी

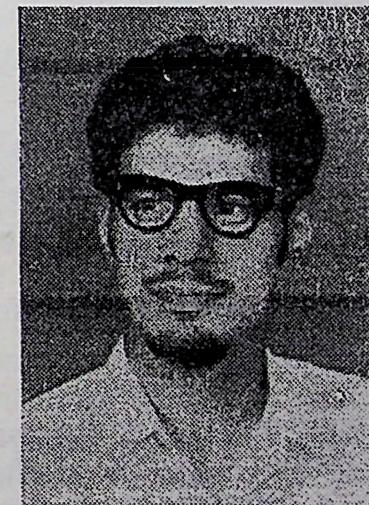
लल्लेश्वरी के वाखों (वाक्यों), और उनके प्रति कश्मीर के हिन्दू-मुसलमान सब का सम्मान, इस पर जब-तब पत्रों में चर्चा की थी।

सुतरां किसी भाषा की एक पुस्तक का प्रकाशन समाप्त होते ही उस भाषा की दूसरी पुस्तक का सानुवाद लिप्यन्तरण का शुभारंभ कर देने के हमारे कार्यक्रम के अनुसार 'लल् द्यद' को हाथ में लेने की उत्कण्ठा हुई। डॉ रेणा ने भी बड़ी तत्परता से लल् के १७९ वाखों का संग्रह संकलित कर उनका सानुवाद लिप्यन्तरण द्रस्ट को भेज दिया। 'द्यद' कश्मीरी भाषा में दादी का ही रूपान्तर है। दादी आदरणीय वृद्धा के लिए भी प्रयुक्त होता है। 'लल् द्यद' पुस्तक का क्लेवर जितना सामान्य है, उसके एक-एक 'वाख' का भाव उतना ही गहन और आत्मा को उद्बुद्ध करनेवाला है। उसका परिचय, 'लल् द्यद—जीवन और कृतित्व' में विद्वान् अनुवादक ने विस्तार से प्रस्तुत किया है।

अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार—

कश्मीरी भाषा की लोकप्रिय रामायण 'रामावतारचरित' एवं प्रस्तुत पुस्तक 'लल् द्यद' के सानुवाद नागरी-लिप्यन्तरणकार का पुष्कल परिचय इन पंक्तियों का अभीष्ट है। डॉ शिवनकृष्ण रेणा का जन्म श्रीनगर कश्मीर में, भारत की आजादी की आखिरी लड़ाई के कीर्तिमान सन् १९४२ में २२ अप्रैल को हुआ। इस अल्पकाल में ही साहित्य-साधना की उल्लेखनीय परिधि तक वे पहुँचे। कश्मीरी विश्वविद्यालय से १९६२ ई० में एम० ए० (हिन्दी) में प्रथम स्थान प्राप्त कर कुर्सेके विश्वविद्यालय से 'कश्मीरी तथा हिन्दी कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन'

विषय पर शोधग्रन्थ लिखकर उन्होंने डॉक्टरेट प्राप्त की। उपरांत, कश्मीरी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में अध्यापक, राजस्थान शिक्षाविभाग में हिन्दी के व्याख्याता, राजकीय कालेज, नाथद्वारा में हिन्दी-विभागाध्यक्ष, नार्थ रीजनल लैंग्वेज सेन्टर, पटियाला में कश्मीरी भाषा के व्याख्याता, और अब इस समय राजस्थान (जयपुर) में पुनः अपने पूर्व पद पर आसीन हैं। कश्मीरी भाषा, साहित्य, जीवन व

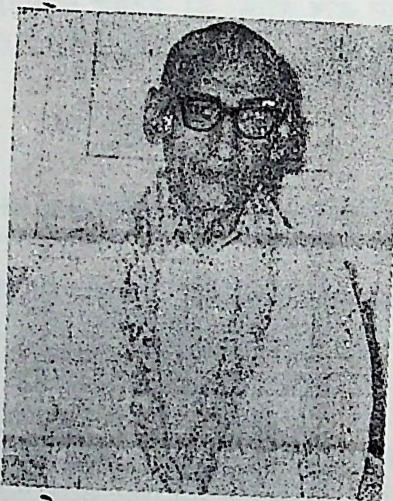


डॉ शिवनकृष्ण रेणा

संस्कृति पर अनेक निबन्धों तथा कई पुस्तकों के रचनात्मक कार्य का श्रेय उनको प्राप्त है। भाषा-जगत् को इस तरुण साधनाशील व्यक्तित्व से बड़ी आशाएँ हैं। भुवन वाणी ट्रस्ट उनके योगदान के लिए कृतज्ञ है।

संस्कृत अनुवाद—

'लल् द्यद' के वाक्यों के संस्कृत पद्यानुवाद के पीछे भी एक तथ्य है। १७९ पदों के इस संग्रह में लगभग ५० पदों का श्री राजानक भास्कर नामक एक प्राचीन विद्वान् द्वारा विरचित अति ललित संस्कृत पद्यानुवाद किसी समय प्रकाशित हुआ था। अब वह अप्राप्य है।



आचार्य श्री रामजी शास्त्री के वरिष्ठ सदस्य हैं। माननीय शास्त्री जी का सुलभ संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

मध्यप्रदेश के मुरंना मण्डल, ग्राम देवगढ़ में कौशिक गोदावीय, माध्यन्दिनी शाखान्तर शुक्लययर्वदीय सनाद्य ब्राह्मण परिवार में पं० रामचूल (बीकानेर) और पश्चात् श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज के संकीर्तन ब्रह्मचर्याश्रम, झूसी (प्रयाग) में अध्यापन एवं निर्वाण वेद विद्यालय, दारागंज प्रयाग में अध्ययन कर १९५० ई० में शास्त्री जी ने लखनऊ आकर निवास किया। व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। नव्य व्याकरण और दर्शनशास्त्र की भी परीक्षाएँ पास कीं। रामचरितमानस-गान, प्रवचन और रामायण, गीता, भागवत आदि के

ग्रन्थम से धार्मिकता-प्रचार में जीवन-रत। आपकी लिखी एवं प्रकाशित पुस्तकों में 'मानस की मणियाँ' ने लोकप्रसिद्ध प्राप्त की है। वैष्णव दीक्षा में दीक्षित, रामोपासक, आजीवन ब्रह्मचारी, 'विद्या ददाति विनय' को चरितार्थ करनेवाले इन सदाशय विद्वान् का सहयोग पाकर भुवन वाणी ट्रस्ट कृतकृत्य है।

कश्मीरी भाषा—

भारतीय भाषा, सम्यता और संस्कृत पर शोध सम्बन्धी लेखन के समय, पाश्चात्य विद्वानों की पुस्तकों और शंघों का सहारा लेना, उनके उद्धरण देकर मत की पुष्टि करना, भारतीय विद्वानों के एक वर्ग में यह गौरव की बात समझी जाती है। पाणिनि का कश्मीर प्रदेश, विद्वानों, ब्राह्मणों और संस्कृत का, सिन्धु से भी अधिव प्राचीन केन्द्र माना जाता है। किन्तु यह पाश्चात्यादी भारतीय विद्वान् शमीरी भाषा को संस्कृत-जन्य न कह कर दरद और पिशाच की पुंजी धोपित करता है।

अधिक लिखने का स्थान नहीं है, प्रीर इस विषय में मेरा अधिक अधिकार भी नहीं है। फिर भी सहज बुद्धि से संक्षेप में कुछ लिखना अनुचित न होगा। दरद और पिशाच आदि जातियों का स्थल कराकोरम और मध्य एशिया के ही अंत-पर्ति में माना जाता है। क्षेत्रीय जलवायु और आस-पड़ोस के सम्पर्क से प्रभावित होकर सभी भाषाएँ, अपनी जननी से कुछ पृथक् तो हो ही जाती हैं, किन्तु वे कुल में भिन्न नहीं मानी जातीं। "दरद और पिशाच भाषाओं को प्राकृत से मूलतः भिन्न मानना बैसा ही है जैसे भोजपुरी को हिन्दी से पृथक् मानना। दरद-पिशाच भी देश-काल-पात्र के प्रभाव से संस्कृत से अथवा प्राकृत से बैसे ही बदलीं जैसे सिन्धी, राजस्थानी आदि।

फिर सामान्य तोड़-मरोड़ भी एक शब्द को इतना भ्राष्टेत्पादक बना देता है कि उसके जनक मूल शब्द की ओर ध्यान ही नहीं जाता। उदाहरण के लिए कश्मीरी भाषा में 'कूदगश ?' का अर्थ है 'कहाँ जाते हो ?' यह कूदगश सुनने में नितान्त अभारतीय प्रतीत होता है। किन्तु यदि इसके बराबर हम 'कुत्र गञ्छसि ?' रख दें, तो संस्कृत के क्षेत्रीय रूपान्तर का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। पाठक 'लल् द्यद' के पदों को ध्यान से पढ़ते समय हिन्दी अनुवाद को भी देखते जायें। हम देखेंगे कि नितान्त अपरिचित और विदेशी प्रतीत होनेवाले शब्द कितना संस्कृत से ओतप्रोत हैं।

प्राक्कथन

भूमिका—

डॉ० बनारसी दास चतुर्वेदी जी ने इस परिश्रम पर भूमिका लिखने (पदों) का सानुवाद लिप्यंतरण प्रस्तुत है। लल द्यद के उपलब्ध लगभग और ट्रस्ट पर स्नेहमय भार है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की मुझमें तामर्थ्य नहीं है। उत्तरोत्तर आशीर्वाद रूपी पूँजी में उनसे समेटना चाहता हूँ।

आभार-प्रदर्शन—

ट्रस्ट के भाषाई सेतुकरण की योजना को, उदार सदाशयों, विद्वानों, एवं उत्तरप्रदेश शासन से प्राप्त सहायता से सहारा मिलता रहा है। अन्य भाषाई ग्रन्थों के साथ, कश्मीरी 'लल द्यद' भी अपनी सहज गति से प्रकाशित होता। सौभाग्य से केन्द्रीय उपशिक्षा मंत्री माननीय श्री डी० पी० यादव, भारत सरकार के राष्ट्रभाषा सलाहकार बहुभाषा-मर्मज्ञ श्री रमाप्रसन्न नायक और शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के शिक्षानिदेशक श्री सनत्कुमार चतुर्वेदी जी की अनुकूप्या हुई जिसके कल-स्वरूप पुस्तक परिपूर्णता की ओर विशेष गति से अग्रसर होकर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत हो सकी है। हम इन महानुभाओं के अतिशय अनुग्रहीत हैं।

हम विश्वास के साथ निवेदन करते हैं कि भूवन वाणी ट्रस्ट की भाषाई सेतुकरण की विशाल और अद्वितीय योजना उत्तरोत्तर फलवती होकर राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को पुष्ट करती रहेगी।

लखनऊ

२५ मार्च, १९७७

नन्दकुमार अवस्थी
मुख्यन्यासी समाप्ति, भूवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

कश्मीर की बहुचर्चित व आदिकवयित्री परमहंस लल द्यद के वाखों की कृपा की है। उनका आशीर्वाद और शुभकामनाओं का मुझ पर सभी वाखों को संकलित कर देवनागरी लिपि में सानुवाद लिप्यंतरित करने का यह प्रथम मौलिक व वैज्ञानिक प्रयास है।

यों लल द्यद के वाखों का संकलन व अनुवाद कई विद्वानों ने किया है जिनमें उल्लेखनीय हैं सर्वक्षी ग्रियर्सन, राजानक भास्कराचार्य, सर्वानन्द चिराणी, जियालाल कौल जलाली, जे० एल० कौल व नन्दलाल कौल तालिब, गोपीनाथ रैना, शंभुनाथ भट्ट हलीम आदि। (इन संकलनकर्ताओं के कार्य का परिचय इसी ग्रन्थ में अन्यत्र 'संत कवयित्री लल द्यद : जीवन और कृतित्व' के अन्तर्गत दिया गया है।) १७९ लल-वाखों को एक ही संकलन के अन्तर्गत हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करने का यह मेरा प्रथम प्रयास है।

कश्मीरी रामायण 'रामावतारचरित' का सानुवाद लिप्यंतरण संपन्न करने के बाद भूवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ के अनुरोध पर मैंने लल-वाखों के संकलन व सानुवाद लिप्यंतरण का काम १९७३ ई० में प्रारम्भ किया। ट्रस्ट के अनुरोध को अनुरोध नहीं, अपितु अपना धर्म मानकर मैं जब काम में जुट गया तो मुझे लगा कि मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ। लल-वाखों का संकलन-संचयन करने के बाद (जिसमें मुझे लगभग एक वर्ष लगा) जब मैं उनका अनुवाद करने बैठा तो मेरी वाणी जाने क्यों लड़खड़ाने लगी, लेखनी जाने क्यों काँपने लगी! धर्म, दर्शन, ज्ञान और भक्ति की पैचींदगियों से संयुक्त इन वाखों का एक-एक शब्द, एक-एक चरण और एक-एक वाक्य मुझे अपने आप में एक-एक शास्त्र लगा। ऊपर से इन वाखों की भाषा आज की कश्मीरी से तनिक भिन्न होने के कारण मेरा रहा-सहा भी भंग हो गया। मैंने निर्णय लिया कि इन वाखों का अनुवाद करना मेरे बस की बात नहीं।

इधर, काम के प्रति मैं उदासीन हो चला और उधर देव को कुछ और ही मंजूर था। सितम्बर ७५ में नाथद्वारा, राजस्थान से मैं ड्यूपुटेशन पर उत्तर अंतर्राष्ट्रीय भाषा केन्द्र, पटियाला में कश्मीरी के व्याख्याता पद पर प्रतिष्ठित हुआ। केन्द्र में उपलब्ध कश्मीरी पुस्तकालय की सुविधा, कुछेक कश्मीरी जाताओं के सान्निध्य आदि ने मेरे कर्मोत्साह को पुनः जाग्रत किया। इसी बीच ट्रस्ट के मुख्य-न्यासी श्रीमान अवस्थी साहब का स्मरण-पत्र प्राप्त हुआ कि मैं लल द्यद का काम अब जल्दी ही समाप्त कर डालूँ क्योंकि ट्रस्ट की आगामी योजना में 'लल-वाखों' के प्रकाशन की घोषणा कर दी गई है। स्मरणपत्र मेरे लिए संजीवनी का काम कर गया और मुझे अपने कर्तव्य-पथ का स्मरण हो आया। उपरान्त, समस्त

चित्तवृत्तियों को बटोरकर मैं काम में लग गया। कुछ इष्टबल और कुछ गुरु-कृपा (ट्रस्ट के मुख्यन्यासी अवस्थी साहब भी उनमें शामिल हैं) कि काम धीरे-धीरे ठिकाने लगता गया। एक-एक वाख का अनुवाद पूरा करने में मैं इतना खो गया कि मुझे खबर ही न रही कि कब सबके सब वाखों का अनुवाद पूरा हो चुका। पटियाला में मेरे मकान-मालिक श्री महेन्द्रसिंह जी बजाज दो विषयों पंजाबी और उर्दू में एम० ए० हैं। मेरा काम देखकर वे काफी प्रभावित हुए। एक सच्चे-हितेषी की तरह वे मेरा उत्साह बढ़ाते रहे, इसके लिए मैं सरदार साहब का हृदय से आभारी हूँ।

वाखों का अनुवाद करते समय मैंने इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है कि प्रत्येक वाख का सही और शुद्ध अनुवाद सामने आ जाए। इसके लिए मैंने कई संदर्भ-ग्रन्थों व विद्वानों से सहायता ली है। (उन सबका मैं आभारी हूँ) फिर भी हो सकता है कि कहीं पर कोई त्रुटि रह गई हो, उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

मूल वाखों को देवनागरी में लिप्यंतरित करने के लिए भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा निर्धारित 'कश्मीरी-देवनागरी वर्णमाला' को आधार बनाया गया है। इस वर्णमाला का परिचय पृष्ठ २३-२४ पर दिया गया है।

उत्तर क्षेत्रीय भाषा-केन्द्र, पटियाला के तेलुगुभाषी कश्मीरी प्रशिक्षणार्थी श्री दाऊद अली मंजू को भी धन्यवाद देना चाहूँगा। प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित ललवाख उन्हीं की रुचि के अनुसार मैंने क्रमबद्ध किए हैं। प्रारम्भ में मैंने इन वाखों को अकारादि क्रम से जमाया था। किन्तु बाद में पाया कि बहुत सारे वाख कथ्य की दृष्टि से एक दूसरे के सार्थ जुड़े हुए हैं। अतः उन्हें अकारादि क्रम से रखना संभव न था।

मैं उत्तर क्षेत्रीय भाषा-केन्द्र, पटियाला के प्राचार्य श्री डा० ओमकार एन० कौल का कृन्ज हूँ जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक निर्देश और सूचनाएँ देकर मेरे परिश्रम को सार्थक बनाने में मेरी आशातीत सहायता की।

बन्धुवर श्री पृथ्वीनाथ साइल का भी आभारी हूँ जो नियमित पत्राचार द्वारा कश्मीर से मुझे आवश्यक सामग्री और सूचनाएँ भिजवाते रहे। भाई साइल ने इसी प्रकार 'रामावतार चरित' को तैयार करते वक्त भी मेरी काफी सहायता की थी। मैं इन लगनशील व सेवाभावी महानुभाव की चिरायु, सुख-समृद्धि व उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूँ। प्रियवर भूषणलाल जाड़ व मोहनकृष्ण रैणा भी धन्यवाद के पात्र हैं। दोनों ने लल-वाखों के संकलन में मेरी बहुत सहायता की। भाषा-जगत् मेरे इस प्रयास का स्वागत करेगा, ऐसा विश्वास है।

डॉ० शिवनकृष्ण रैणा

लल द्यद : जीवन और कृतित्व

(डॉ० शिवनकृष्ण रैणा एम० ए०, पीएच० डी०)

लल द्यद को कश्मीरी जनता ललेश्वरी, ललयोगेश्वरी, लला, लल, ललारिका आदि नामों से जानती है।^१ इस कवयित्री का जन्मकाल विद्वानों के बीच विवाद का विषय बना हुआ है। डा० ग्रियर्सन तथा आर० सी० टेम्पल ने लल द्यद की जन्मतिथि : देकर उसकी जन्मशती का उल्लेख किया है। उनके अनुसार कवयित्री का आविर्भाव १४वीं शताब्दी में हुआ था तथा वह प्रसिद्ध सूफी संत सथ्यद अली हमदानी के समकालीन थी।^२ डा० जी० एम० सूफी तथा प्रेमनाथ बजाज लल द्यद का जन्म सन् १३३५ ई० में मानते हैं।^३ श्री जियालाल कौल के मतानुसार लल द्यद का जन्म १४वीं शती के मध्य में सुल्तान अलाउद्दीन (१३४७ ई०) के समय हुआ था।^४ श्री जियालाल कौल जलाली लल द्यद का जन्म १४वीं शती के दूसरे दशक में भाद्रपद की पूर्णिमा को मानते हैं। "वाक्याते-कश्मीर" में लल द्यद का जन्मकाल ७४८ हिजरी तदनुसार १३४८ दिया गया है। कश्मीर के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हसन-ख़्यामी ने तारीख-ए-कश्मीर में लल द्यद का जन्म वर्ष ७३५ हिजरी तदनुसार १३३५ ई० दिया है।^५ विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न जन्म-तिथियों का विश्लेषण करने पर लल द्यद का जन्मकाल १३३५ ई० अधिक उपयुक्त ठहरता है।^६

१. लल द्यद का जन्म-नाम कुछ और रहा होगा। 'लल' कश्मीरी में तोद को कहते हैं तथा 'द्यद' किसी भी आदरणीय प्रोड़ा के लिए प्रयुक्त होनेवाला आदर-सूचक शब्द है। कहते हैं कि लल द्यद प्रायः अर्धनग्नवस्था में धूमती रहती थी और उसकी तोद इतनी विकसित थी कि उसके गुप्तांग उस तोद से ढके रहते थे। पं० गोपीनाथ रैना ने अपनी पुस्तक "ललवाक्य" में लल द्यद का जन्म-नाम पद्मावती बताया है।

२ 'लल वाक्यानि' १९२०, पृ० ३ तथा "द वडॅ आफ लला प्राफेस" १९२९, पृ०—१

३ 'कशीर' प्रथम भाग, पृ० ३८३ तथा "द डाटसं आफ वितस्ता"

४ "स्ट्रीज इन कश्मीरी" पृष्ठ २९

५ "काशरि अदुबुच तारीख" अवतार कृष्ण रहवर, पृ० १५०-१५१

६ कहा जाता है कि लल द्यद ने अपने जीवनकाल में तत्कालीन युवराज शहाबुद्दीन, प्रसिद्ध मुसलमान सन्त सेयद जलालुद्दीन बुखारी, सेयद हुसैन समनानी, सैयद अली हमदानी आदि से भेंट की थी। ये घटनायें क्रमशः ७४८ हिं०, ७५३ हिं०, और ७८१ हिं० की हैं। स्पष्ट है कि लल द्यद का इन हिजरी वर्षों के पूर्व न केवल जन्म हुआ था अपितु वह मूर्णतया सयानी भी हो चुकी थी।

लल द्यद की मरण-तिथि जन्म-तिथि के समान अनिश्चित है। केवल इतना कहा जाता है कि जब लल द्यद ने प्राण त्यागे तो उस समय उसकी देह कूर्मदंन के समान दमक उठी। यह घटना इस्लामाबाद के निकट विजयविहार में हुई बतायी जाती है।^१ लल द्यद का मृत शरीर बाद में किधर गया, उसे कहाँ जलाया गया आदि, इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। किबद्धती है कि प्रसिद्ध सन्त-कवि शेख नूरुद्दीन वली ने जिसका जन्म १३७६ ईसवी में हुआ, लल द्यद के फटकारने पर अपनी गाँ के स्तनों से दुर्घट-पान किया था। इससे लल द्यद का कम से कम १३७६ ई० तक जीवित रहना सिद्ध होता है।

लल द्यद का जन्म पांपोर के निकट सिमपुरा गाँव में एक ब्राह्मण किसान के घर हुआ था। यह गाँव श्रीनगर से लैगेभग ९ मील की दूरी पर स्थित है। तत्कालीन प्रथानुसार लल द्यद का विवाह उसकी बाल्यावस्था में ही पांपोर ग्राम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण घराने में हुआ। उसके पति का नाम सोनपंडित बताया जाता है।^२ बाल्यकाल से ही इस आदि कवयिकी का मन सांसारिक वन्धनों के प्रति विद्रोह करता रहा। जिसकी चरम-परिणति बाद में भाव-प्रवण दार्शनिक “वाख-साहित्य” के रूप में हुई।^३ लल द्यद को प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपने कुल-गुरु श्री सिद्धमोल से प्राप्त हुई। सिद्धमोल ने उसे धर्म, दर्शन, ज्ञान और योग सम्बन्धी विभिन्न ज्ञातव्य रहस्यों से अवगत कराया तथा गुरुपद का अपूर्व गौरव प्राप्त कर लिया। अपनी पत्नी में बढ़ती हुई विरक्ति को देखकर एक बार सोनपंडित ने सिद्धमोल से प्रार्थना की कि वे लल द्यद को ऐसी उचित शिक्षा दें जिससे वह सांसारिकता में रुचि लेने लगे। कहते हैं कि सिद्धमोल स्वयं लल द्यद के घर गये। उस समय सोनपंडित भी वहाँ पर मौजूद थे। इससे पूर्व कि गुरुजी लल द्यद को सांसारिकता का पाठ पढ़ाते, एक गम्भीर चर्चा छिड़ गई। चर्चा का विषय था— १. सभी प्रकाशों में कौन-सा प्रकाश श्रेष्ठ है, २. सभी तीर्थों में कौन-सा तीर्थ श्रेष्ठ है, ३. सभी परिजनों में कौन-सा परिजन श्रेष्ठ है, और ४. सभी सुखद वस्तुओं में कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है?

१ “कश्मीरी जबान और शायरी,” आजाद पृ० १२५, भाग २।

२ “ललद्यद और उनकी दार्शनिक विचारधारा” डा० कृष्णा शर्मा, “मार्गदर्शक” (कश्मीर-विशेषांक) ज्ञानसी पृ० २१९।

३ ललद्यद की तबियत में वचपन से ही कुछ ऐसी बातें थीं जिनसे जाहिर होता है कि इसके दिल व दिमाग पर प्रारम्भ से ही गैर मामूली प्रभाव था। वह प्रायः अकेली बैठती और गहरे सोच में डूबी रहती। दुनिया की कोई दिलचस्पी उसके लिए आकर्षण का केन्द्र न बन सकी। वह प्रायः इस असाधारण स्वभाव के कारण अपनी सहेलियों के बीच हास-परिहास का विषय बन जाती। “कश्मीरी जबान और शायरी,” पृष्ठ ११३ भाग २।

सर्वप्रथम सोनपंडित ने अपनी मान्यता यों व्यक्त की—सूर्य-प्रकाश से बढ़कर कोई प्रकाश नहीं है, गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, भाई के बराबर कोई परिजन नहीं है, तथा पत्नी के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।^४ गुरु सिद्धमोल का कहना था—नेत्र-प्रकाश के समान और कोई प्रकाश नहीं है, घुटनों^५ के समान और कोई तीर्थ नहीं है, जेब के समान और कोई परिजन नहीं है, तथा शारीरिक स्तर के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।^६ योगिनी लल द्यद ने अपने विचार यों रखे—मैं अर्थात् आत्मज्ञान के समान कोई प्रकाश नहीं है, जिज्ञासा के बराबर कोई तीर्थ नहीं है, भगवान् के समान और कोई परिजन नहीं है, तथा ईश्वर-भय के समान कोई सुखद वस्तु नहीं है।^७ लल द्यद का यह सटीक उत्तर सुनकर दोनों सोनपंडित तथा सिद्धमोल अवाक् रह गये।

विवाह के पश्चात् सुसुराल में लल द्यद को अपनी सास की कट्टु आलोचनाओं एवं यन्त्रणाओं का शिकार होना पड़ा। किन्तु वह उदार-शीला यह सब पूर्ण धैर्य के साथ झेलती रही। एक दिन लल द्यद पानी भरने घाट पर गई हुई थी। माँ ने पुत्र को उकसाया—देख तो यह चुड़ेल घाट पर इतनी देर से क्या कर रही है। सोनपंडित लाठी लेकर घाट पर गये। सामने से लल द्यद सिर पर पानी का घड़ा लिए आ रही थी। सोनपंडित ने जोर से लाठी घड़े पर चलाई। घड़ा फूट कर खण्डित हो गया, किन्तु कहते हैं कि पानी ज्यों का त्यों उस देवी के सिर पर टिका रहा। घर पहुँचकर लल द्यद ने इस पानी से बर्तन भरे तथा जो पानी बचा रहा उस पानी को खिड़की से बाहर फेंक दिया। थोड़े दिनों के बाद उस स्थान पर एक तालाब बन गया जो अभी भी “लल नाग” (तड़ाग) के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार एक दिन लल द्यद के समुन्ने सहभोज दिया। लल द्यद अपनी दैनिक चर्चा के अनुसार घाट पर पानी भरने के लिए गई। वहाँ बातों ही बातों में सहेलियों ने उसे छेड़ा—आज तो तेरे घर में तरह-तरह के पकवान बने हैं, आज तो पेट भर तुझे स्वादिष्ट पदार्थ खाने को मिलेंगे। लल द्यद ने दीनतापूर्वक उत्तर दिया—

१ सिरियस हथु न प्रकाश कुने, गंगि हथु न तिरुथ कांह।

२ बौयिस हथु न बांदव कुने, रनि हथु न सीख कांह॥

३ अंचन हथु न प्रकाश कुने, कौरुयन हथु न तिरुथ कांह।

४ चन्द्रस हथु न बांदव कुने, रनि हथु न सीख कांह॥

५ मेयस हथु न प्रकाश कुने, पेयस हथु न तिरुथ कांह।

६ दयस हथु न बांदव कुने, देयस हथु न सीख कांह॥

“घर में चाहे बकरा कटे या भेड़, मेरे भाग्य में तो पत्थर के टुकड़े ही लिखे हैं।”^१ कहते हैं कि लल द्यद की निर्दयी सास उसे कभी भरपेट भोजन नहीं देती थी। दिखावे के लिए थाली में एक पत्थर रखकर उसके ऊपर भात का लेप करती, नौकरों की तरह काम लेती आदि। इस समय तक ललद्यद की अन्तर्दृष्टि दैहिक चेष्टाओं की संकीर्ण परिसीमाओं को लाँचकर असीम में फैल चुकी थी। वह वन-वन अन्तर्ज्ञान का रहस्य अन्वेषित करने के लिये डोलने लगी। यहाँ तक कि उसने वस्त्रों की भी उपेक्षा कर दी। उसकी आचार-मर्यादा क्रतिम व्यवहारों से बहुत ऊपर उठकर समष्टि में गोते लगाने लगी। नाचती, गाती तथा आनन्दमग्न होकर विवस्त्र घूमती रहती। पुरुष उन्हीं को मानती जो भगवान से डरते हों, और ऐसे पुरुष उसके अनुसार इस संसार में बहुत कम थे। शेष के सामने नग्नावस्था में फिर घूमने-फिरने में शर्म कैसी? एक दिन लल द्यद को प्रसिद्ध सूफी संत मीर सैयद हमदानी सामने से आते दिखाई पड़े। उसने एकदम अपनी देह को आवृत्त करने का प्रयास किया। निकट पहुँचकर संत हमदानी ने पूछा—हे देवि, तुमने अपनी देह की यह क्या हालत बना रखी है? तुम्हें नहीं मालूम कि तुम नंगी हो। लल द्यद ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—हे खुदा-दोस्त, अब तक मेरे पास से केवल औरतें गुचरती रहीं, उनमें से कोई पुरुष अथवा आँखवाला नहीं था। आप मुझे मर्द तथा तत्त्वज्ञानी दीख पड़े, इसलिए आपसे अपनी देह छिपा रही हूँ। एक और घटना इस प्रकार है। कहते हैं कि जब संत हमदानी को दूर से आते देखा तो वह चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी कि आज मुझे असली पुरुष के दर्शन हो रहे हैं। वह एक बनिये के पास गई और तन ढकने के लिए वस्त्र मांगे। बनिये ने कहा कि आज तक तुम्हें कपड़े की आवश्यकता नहीं पड़ी तो इस समय क्यों मांग रही हो। लल द्यद ने उत्तर दिया—वे जो महापुरुष सामने से आ रहे हैं, मुझे पहचानते हैं और मैं उन्हें। इतने में सन्त हमदानी समीप पहुँच गये। पास ही एक नानबाई का तन्दूर जल रहा था। लल द्यद तुरंत उसमें कूद पड़ी। मुस्लिम सन्त पूछताछ करते वहाँ पहुँच गये और उन्होंने आवाज़ दी—ऐ लल, बाहर आओ, देखो तो कौन खड़ा है। उसी क्षण लल द्यद सुन्दर दिव्य वस्त्र धारण किये प्रत्यक्ष हो गई।^२

लल द्यद के कोई सन्तान न हुई थी। प्रकृति ने इस बन्धन से

१ इस घटना का आधार लेकर कश्मीर में एक कहावत प्रचलित हो गई है—“ललि नीलवठ त्रुति नु जांह” अर्थात् लल के भाग्य से पत्थर कहाँ टलेंगे।

२ इस घटना पर भी एक कहावत प्रचलित है—“आये बनिस तु गयि काँदरस” अर्थात् आयी तो थी बनिये के पास किन्तु गई नानबाई के पास।

‘मुक्त रखा था कवयित्री ने स्वयं एक स्थान पर कहा है—“न सूता बनी और न मैंने प्रसूता का आहार ही किया।”^१)

विपरीत पारिदारिक परिस्थितियों ने लल द्यद को एक नई जीवन-दृष्टि प्रदान की। उसने अपनी समस्त अभीष्ट पूर्तियों को व्यापक रूप दे दिया तथा अपनी आत्मा के चिर अन्वेषित सत्य को ज्ञान एवं भक्ति की सर्वस्पर्शी अभिव्यक्तियों में साकार कर दिया। ये स्फुट किन्तु सरस अभिव्यक्तियाँ “वाख” कहलाती हैं। कबीर की भाँति ललद्यद ने भी “मसि-कागज” का प्रयोग कभी नहीं किया। उसके वाख गेय हैं जो प्रारम्भ में मौखिक परम्परा में ही प्रचलित रहे तथा उन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रियसंन महोदय का नाम उल्लेखनीय है।^२ उन्होंने महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री की सहायता से १०६ वाख एकत्रित किये तथा उन्हें “ललवाक्यानि” के अन्तर्गत सम्पादित किया। यह पुस्तक सन् १९२० में रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन से प्रकाशित हुई है। श्री आर० सी० टेम्पल की पुस्तक “द वर्ड आफ लला” में लल द्यद के वाक्यों का गम्भीर अध्ययन मिलता है। यह पुस्तक सन् १९२४ में विश्वविद्यालय प्रेस, कैम्ब्रिज में प्रकाशित हुई है। राजानक भास्कराचार्य का लल द्यद के ६० वाखों का संस्कृत रूपान्तरण भी मिलता है। लल द्यद के वाखों (वाक्यों) का संकलन व अनुवाद करने में जिन दूसरे विद्वानों ने उल्लेखनीय कार्य किया है, उनके नाम हैं—सर्वश्री सर्वनिन्द चरागी, आनन्द कौल बामजाई, रामजू कल्ला, जियालाल कौल जलाली, गोपीनाथ रैना, जियालाल कौल, आर० के० वांचू तथा नन्दलाल तालिब। श्री सर्वनिन्द चरागी ने “कलाम-ए-ललारिफा”^३ के अन्तर्गत लल द्यद के १०० वाखों का हिन्दी में अनुवाद किया है। श्री आनन्द कौल बामजाई ने ७५ तथा रामजू कल्ला ने “अमृतवाणी” में १४६ ललवाखों को प्रकाशित किया है।

१ “न प्यायस, न जायस, न खेयम हंद तुने शोंठ”

२ सन् १९१४ में प्रियसंन ने लल वाक् एकत्रित कर उन्हें पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। इस कार्य के लिए उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध कश्मीरी विद्वान पं० मुकुन्दराम शास्त्री का सहयोग लिया। मुकुन्दराम ने काफी खोज की किन्तु ललवाक् सम्बन्धी कोई भी सामग्री उनको हाथ न लगी। एक बार वे बारामूला से ३० मील दूर “गुण” नाम के गाँव में पहुँचे। वहाँ पर उनकी भेट धर्मदास नामक एक हिन्दू सन्त से हुई। इस सन्त को लल द्यद के अनेक वाख (वाक्) कण्ठस्थ थे। मुकुन्दराम ने इन वाकों का संग्रह कर उन्हें संस्कृत व हिन्दी रूपान्तर के साथ प्रियसंन महोदय को सौंप दिया। इन्हीं “वाकों” को बाद में प्रियसंन ने सन् १९२० में लन्दन से प्रकाशित करवाया।

४० जियालाल कौल जलाली ने अपनी पुस्तिका “ललवाख” में ३८ वाखों का हिन्दौ में अनुवाद किया है। जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित “ललद्यद” (१९६१) में लगभग १३५ वाख अकलित हैं। इस पुस्तक के सम्पादक श्री जियालाल कौल तथा श्री नन्दलाल तालिब हैं।

लल द्यद के “वाख” प्रायः छन्द-मुक्त हैं। चार-चार ‘पादों के ये स्फुट ‘वाख’ लययुक्त हैं। इनमें कवयित्री ने जीवन दर्शन की गूढ़तम गुरुत्थियों को सहज-सरल रूप में गूथ दिया है। लल द्यद के कृतित्व का परिचय पहली बार “तारीख-ए-कश्मीर” (१७३० ई०) में मिलता है। इसके पूर्व वह उपेक्षिता ही रही है। श्रीवर की “जैनराज तरंगिणी” तथा जौनराज की “जैनतरंगिणी” में भी उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वस्तुतः १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में लल द्यद के कृतित्व की ओर जनता का ध्यान गया और उसका विधिवत् महत्वांकन होने लगा।

लल द्यद के वाख-साहित्य का मूलाधार दर्शन है। उसका प्रत्येक वाख दार्शनिक चेतना का आगार है जिस पर प्रमुखतः शैव, वेदान्त, तथा सूक्ष्मी दर्शन की छाप स्पष्ट है। जिस समय लल द्यद का आविर्भाव हुआ उस समय कश्मीर में इस्लाम धर्म का एक विचार-पद्धति के रूप में आगमन हो चुका था। देश में घोर अशान्ति व धार्मिक अव्यवस्था व्याप्त थी। धर्मान्ध कटूरपन्थी अपने-अपने धर्म-सम्प्रदायों का प्रचार प्रसार करने में दत्तचित्त थे। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विषमतायें भी जनता को आड़े हाथों ले रही थीं। ऐसे विकट क्षणों में लल द्यद ने जनता के समक्ष धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए जनवाणी में परम सत्य की सार्थकता को ऐसी व्यापक तथा सर्वसुलभ संघटित शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसमें न कोई दुराव था, न कोई आवरण, और न कोई विक्षेप। लल द्यद की यह सत्य-प्रतिष्ठा विशुद्धतः उसकी अन्तरानुभूति की देन है।

लल द्यद विश्वचेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती है। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमचेतना का आभास होना सम्भव है। यह रहस्य उसे अपने गुरु से ज्ञात हुआ था:—

गोरन दौपनम कुनुय वच्चुन,
न्यबर दौपनम अंदर अच्चुन,
सुय मैं ललि गोम वाख त वच्चुन,
तवय ह्यौतुम नंगय नच्चुन ॥

गुरु ने मुझे एक रहस्य की बात बताई—बाहर से मुख मोड़ और अपने अन्तर को खोज। बस, तभी से यह बात हृदय को छू गई और मैं विवस्त्र नाचने लगी।

लल द्यद उस सिद्धावस्था को पहुँच चुकी थी जहाँ स्व और पर को भावनायें लुप्त हो जाती हैं—जहाँ मान-अपमान, निन्दा-स्तुति आदि भावनायें मन की संकुचितता को लक्षित करती हैं। जहाँ पंचभौतिक काया मिथ्याभासों एवं क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर विशुद्ध स्फुरणाओं का केन्द्रीभूत पुंज बन जाती है—

युस हो मालि हैड्यम, गेल्यम मसखरु करयम,
सुय हो मालि मनस खट्यम नु जांह ।
शिव पनुन येलि अनुग्रह कर्यम,
लुकुहन्द हैडुन मे कर्यम क्याह ॥

चाहे कोई मेरी अवहेलना करे या तिरस्कार, मैं कभी मन में उसका बुरा न मानूंगी। जब मेरे शिव का मुङ्ग पर अनुग्रह है तो लोगों के भला-बुरा कहने से क्या होता है ?

इस असार-संसार में व्याप्त विभिन्न विरोधाभासों को देखकर लल द्यद का अन्तर्मन विह्वल हो उठा और उसे स्वानुभूति का अनूठा प्रसाद मिल गया—

गाटुला अख वुछुम बौछि सूत्य मरान,
पत जन हरान पौहन्य वाव लाह ।
निश बौद अख वुछुम वाज्जस मारान,
तनु लल बु प्रारान छेन्यम नु प्राह^१ ॥

शंकर के अद्वैत का लल द्यद ने पूर्ण सहृदयता के साथ निरूपण किया है। सकल सृष्टि में जो गोचर है वह परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। “मैं ही ब्रह्म हूँ”, वह मेरे पास है—मुझसे अलग नहीं है। उसे ढूँढ़ने के लिए तनिक एकाग्रता, लगन तथा त्याग की आवश्यकता है। कुत्सित स्वार्थ, सीमित मनोवृत्ति आदि का विसर्जन भी अनिवार्य है—

लल बु द्रायस लोलरे,
छांडन रूज्जुस दौह क्योह राथ ।
वुछुम पंडिता पननि गरे,
सुय मैं रौटमस न्यछतुर तु साथ ॥

^१ एक प्रबुद्ध को भूख से मरते देखा, पतझर सा जीण-शीण हुआ पड़ा।
एक निर्बुद्ध से रसोइये को पिटते देखा, उसी से यह मन बाहर निकल पड़ा।

मैं उस परम शक्ति को घर से ढूँढते-ढूँढते निकल पड़ी । उसे ढूँढते-ढूँढते रात-दिन बीत गये । अन्त में देखा, वह मेरे ही घर में विद्यमान है । बस, तभी से मेरी परमात्म-साधना का उचित मुहूर्त निकल आया ।

रंगस मंज ब्यौन - ब्यौन लगुन,
सारिय ब्राब्र लख तु सौख ।
चख रिश त वार येलि मनुमंज गालख,
अदु डेशख शिव सुंद मौख ।

इस संसाररूपी रंगशाला में तुझे भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियाँ देखने को मिलेंगी । वस्तुतः ये सभी एक हैं—उनके वास्तविक रूप को ढूँढ़ । जब तू इसके लिए सुख-नुःख उठायेगा तथा धृणा, वैर आदि को मन से गला देगा तब तुझे शिवमुख के दर्शन होंगे ।

कुस मरि तु कस मारन,
मारि कुस तु मारन कस,
युस हरु - हरु व्राविथ गरु-गरु करि,
अदु सुय मरि तु मारन तस ॥

कौन मारेगा और किसको मारा जायगा, कौन मारेगा और किसको मारेंगे । जो शिव-शिव कहना छोड़कर घर-घर कहने लगेगा बस वही मरेगा और उसी को मारेंगे ।

गगन चुय भूतल चुय,
चुय द्यन पवन तु राथ,
अरुग चंदन पोश पोन्य चुय,
चुय छुख सकलय तु लांगिजि क्याह ॥

तू ही गगन है, तू ही भूतल, दिन, पवन व रात है । अर्ध्य, चन्दन, पुष्प, पानी आदि भी तू ही है । तू ही सब कुछ है, फिर है भगवान तुझे क्या चढ़ाऊँ ?

मंकरिस जन मल चौलुम मनस,
अदु मे लंबुम जँनिस जान ।
सुय येलि डचूठुम निशि पानस,
सोरुय सुय तु बु नो कांह ॥

धुल गई जब मैल मन-दर्पण से तो उसे अपने में ही स्थित पाया । तब सर्वत्र ही दिखने लगा वह, और व्यक्तित्व मेरा शून्य हो आया ॥

लल द्यद ने धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों तथा विक्षेपों का खुलकर खण्डन किया है । कबीर की भाँति उसने दोनों हिन्दुओं तथा मुसलमानों को खरी-खोटी सुनाई है । धर्म का वास्तविक अर्थ है मन की शुद्धता । वस्तुतः यही शुद्धता जीव को परमत्व तक पहुँचा सकती है ।

बुथ क्याह जान छुय बौदु छुय कंन्य,
असलुच कथ जांह संनिय नो ।
परान तु लेखान वुठ तु ओंगजि गजी,
अंदरिम दुय जांह चंजिय नो ॥

मुखाकृति अत्यन्त सुन्दर है किन्तु हृदय पत्थर-तुल्य है—उसमें तत्व की बात कभी समायी नहीं । पढ़-पढ़ व लिख-लिखकर तुम्हारे होंठ व तेरी उंगलियाँ घिस गईं मगर तेरे अन्तर का दुराव कभी दूर न हुआ ।

अविचारी हा मालि छिय पोथ्यन परान,
यिथु तोतु परान राम पंजरस ।
गीता परान हत्या लबान,
पंरुम गीता तु परान छस ॥

अविचारी पोथ्याँ ऐसे पढ़ते हैं जैसे तोता पिजरे में राम-राम रटता है । ऐसे व्यक्ति गीता पढ़ते हैं तो केवल दिखावे के लिए । मैंने सचमुच गीता पढ़ी है तथा उसे पढ़ रही हूँ ।

अटनुच सन दिथ थावान मटन,
लूब बौछ बोलान ग्यानुच कथ ।
फंट्य फंट्य नेरान तिम कति वटन,
तुक अय मालि छुख तु पोर गछ पथ ॥

एक स्थान से माल छीनकर दूसरे स्थान पर रखते हैं, और ऊपर से ये लोभी ज्ञान की बातें करते हैं । ऐसे पाखण्डी भला क्या प्राप्त कर सकते हैं ? हे मनुष्य ! यदि तू बुद्धिमान है तो इस पाखण्ड को त्याग दे ॥

शिव छुय थलि थलि रोज्जान,
मो जान ह्योंद तु मुसलमान ।
तुक अय छुख तु पान परज्जान,
सौय छय साहिवस सूत्य जान ॥

शिव सर्वत्र व्याप्त है । अतः हे मनुष्य ! तू हिन्दू तथा मुसलमान विशुद्ध और आज्ञा को वश में करके मैंने ब्रह्मरन्ध्र को जगाया तथा प्राण-की बात है ।

लंज कासि शीत निवारि,
वन जलि करि आहार ।
यि कम्य वौपदीश कोरुय हा बटा,
अचेतन बटस चेतन कठ दिन आहार ॥

यह तेरी लज्जा को ढाँकता है, शीत से भी रक्षा करता है । स्वयं एक मन भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो रहे हैं । यदि ये सभी तृण-जल का आहार करता है । यह उपदेश तुक्को किसने दिया जो मिलकर एक ही दिशा की ओर प्रवृत्त हों तो निश्चय ही परमसत्य की तू अचेतन पत्थर पर चेतन बकरे को बलि चढ़ाता है ।

लल द्यद ने भाग्य की अनिवार्यता को यत्न-तत्त्व स्वीकार किया है । है । चिरस्थायी तो केवल शिव हैं । भाग्य का लेख अमिट है, उसे कोई मिटा नहीं सकता—

हा मनुशि क्याजि छुस बुठान सेकि लूर,
अमी रंखि हा मालि पकि नु नाव ।
ल्युखुय यि नारान्य करमुनि रंखी,
ती मालि हेकि नु फिरिथ जांह ॥

हे मनुष्य ! तू क्यों रेत की रस्सी बनाता है, इससे तेरी जीवन-नीया पार नहीं लग सकती । नारायण ने जो तेरी भाग्य देखा खींची है, वह कभी बदल नहीं सकती ।

लल द्यद के साधना-पक्ष में योग को विशिष्ट स्थान प्राप्त है । यह तथ्यों की प्रधानता के साथ-साथ काव्यात्मक सौन्दर्य की गहनता भी विपुल योग कोरे बौद्धिक चिन्तन का प्रतिफलन नहीं है, उसमें प्रेम का माधुर्य मात्रा में दृष्टिगत होती है । अपनी भावनाओं को मूर्त्तंखप प्रदान विद्यमान है । योग की अनेक अन्तर्देशाएँ तथा कोटियाँ हैं । योगी को करने के लिए कवियत्री ने प्रमुखतया उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास इनसे विधिवत् गुजारना पड़ता है और तब उस अमर-तत्त्व की प्राप्ति होती है— अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत

शे वन चटिथ शशिकल वुजुम
प्रकृत वुजुम पवन सूत्य ।
लोलकि नारु सूत्य वालिज वुजुम,
शंकर लोबुम तमी सूत्य ॥

शरीर में स्थित षट्चक्रों मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, में भेद न जान, यदि तू बुद्धिमान है तो अपने आपको पहचान, यही रहस्य याम द्वारा अपने अन्तर को वश में करके प्रेम की अग्नि से उसे कुन्दन बना दिया, तब कहीं शिव के दर्शन हुए ।) V-
—

क्याह करु पांचन दैहन तु काहन
वुशुन यथ लेजि कंरिथ यिम गय ।
सारिय समहन यथ रजि लमहन,
अदु क्याजि राविहे कहन गाव ॥

पंचभूत काया में वर्तमान पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा तृण-जल का आहार करता है । स्वयं एक मन भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो रहे हैं । यदि ये सभी तू अचेतन पत्थर पर चेतन बकरे को बलि चढ़ाता है । प्राप्ति होगी । इस असार संसार में कोई भी वस्तु चिरस्थायी नहीं

दमी डचाठुम नद गज्जवनी
दमी डचूठुम सुम नत तार ।
दमी डचाठुम थेर फौलवुनी
दमी डचूठुम गुल नतु खार ॥

अभी-अभी नदी को गर्जते देखा, अभी-अभी उसपर पुल बनते देखा । अभी-अभी फलोंसे लदी डाली देखी और अभी-अभी उसपर न फूल देखे न काटे ।

लल द्यद का कृतित्व सांस्कृतिक पुनर्जगरण, मानव-कल्याण तथा सामाजिक पुनरस्थान की दार्शनिक अभिव्यक्ति है जिसमें सरसता, स्पष्टता एवं सजीवता एक साथ गुम्फित है । उसके वाकों में धर्मदर्शन सम्बन्धी योग कोरे बौद्धिक चिन्तन का प्रतिफलन नहीं है, उसमें प्रेम का माधुर्य मात्रा में दृष्टिगत होती है । अपनी भावनाओं को मूर्त्तंखप प्रदान विद्यमान है । योग की अनेक अन्तर्देशाएँ तथा कोटियाँ हैं । योगी को करने के लिए कवियत्री ने प्रमुखतया उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास इनसे विधिवत् गुजारना पड़ता है और तब उस अमर-तत्त्व की प्राप्ति होती है— अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत

संयोजित कार्य-व्यापार साधारण जन-जीवन से लिये गये हैं, जिनमें सहजता के साथ-साथ पर्याप्त अभिव्यञ्जना शक्ति समाहित है। रस परिपाक की दृष्टि से सम्पूर्ण वाक्-साहित्य में प्रायः शान्त रस की प्रबलता है।

भाषागत दृष्टि से ललद्यद के वाख विशेष महत्व के हैं। लल द्यद के पूर्व कोई भी संरचना ऐसी नहीं मिलती जो कश्मीरी में लिखी गई हो। यद्यपि कुछ विद्वान् शितिकण्ठ की "महानय प्रकाश" को कश्मीरी की प्रथम कृति मानते हैं किन्तु उसकी भाषा कश्मीरी के उतनी निकट नहीं है जितनी लल द्यद के वाकों की है। भाषा-वैज्ञानिक-दृष्टि से इन वाकों का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। लल द्यद की भाषा मूलतः संस्कृत-निष्ठ है, जिस पर यत्र-तत्र फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रभाव भी मिलता है। संस्कृत के अनेक शब्द कवयिकी ने अपने मूल रूप में प्रयुक्त किये हैं, जैसे— प्रकाश, तीर्थ, अनुग्रह, कर्म, बान्धव, मूढ़, मनुष्य, नारायण, मन, शीत, तृण, उपदेश, अचेतन, आहार, शिव, हर, गणन, भूतल, पवन, फल, दीप, शम्भु, अर्ध्य, ज्ञान, राम, गीता, मूर्ख, पंडित, मान, संन्यास आदि। किन्हीं संस्कृत शब्दों का कश्मीरी-संस्करण करके प्रयोग किया गया है, जैसे—

समसार = संसार, दर्शन = दर्शन, बौद = बुद्धि, गौपत = गुप्त, सौख = सुख, मौख = मुख, शिन्य = शून्य, लंज = लज्जा, रुख = रेखा, वेणना = तृष्णा आदि। अरबी फ़ारसी से लिये गये कुछ शब्द इस प्रकार हैं—साहिब, दिल, जिगर, मुश्क, गुल, खार, बाग, कलमा, शिकार आदि।



भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रयुक्त

कश्मीरी वर्णमाला का देवनागरी रूपान्तर

कश्मीरी-देवनागरी वर्णमाला

ई	इ	आ	आ	आ	आ
की	कि	का	क	का	क
ओ	ओ	ऊ	उ	ऊ	ऊ
की	की	कू	कु	कू	कु
इ	ए	ओ	ओ	ओ	ओ
कि	के	के	के	के	के
छ	च	ग	ख	क	क
ट	ज	ঁ	ঁ	ঁ	ঁ
দ	ঁ	ঁ	ঁ	ঁ	ঁ
ঁ	ঁ	ঁ	ঁ	ঁ	ঁ
ম	ব	ফ	প	ন	ন
ব	ল	র	য	ঁ	ঁ
হ	স	ঁ	ঁ	শ	শ

कश्मीरी की विशिष्ट छवनियों, उनके उच्चारणों, उनके लिए निर्धारित मात्रा-चिह्नों, उनके संस्थानों आदि का सोदाहरण विवरण अगले पृष्ठ पर इस प्रकार है:—

विशिष्ट स्वर तथा मात्राएँ—

बै (१)	प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, अर्धसंवृत् । जैसे, 'e' certainly में । लौर = मकान, गर = घड़ी, नौर = बांह
आौ (१)	प्रसारित ओष्ठ, पश्च, दीर्घ, अर्धसंवृत् । जैसे, 'i' bird में या 'u' curd में । हौर = मैना, लौर = खोरा, माँज = माँ ।
डु (१)	प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, संवृत् । जैसे, 'ai' certain में या 'e' broken में । गुथ = लहर, तर = चियड़ा, वृ = मैं
कु (१)	प्रसारित, ओष्ठ, पश्च, संवृत्, दीर्घ । (तनिक दीर्घ-प्रयत्न के साथ) तूर = सर्दी, मुत्त्य = साथ, कूदय = केंद्री
ओौ (१)	गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत्, ह्रस्व । जैसे, 'o' oclock में । नौट = घड़ा, सौन = गहरा, नौन = नंगा ।
ओौ (१)	गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत्, ह्रस्व । अत्यल्प 'v' मिश्रित, जैसे, 'ua' equal में । (उच्चारण के समय ओष्ठों पर चाहर की ओर तनाव रहता है) सौन = सोना, बौन = नीचे, मौण = विद्यवा ।
बैौ (१)	प्रसारित ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत्, ह्रस्व जैसे 'e' best में । बैौ = छह, मैौ = मुझे, बौह = बैठो ।

विशिष्ट व्यञ्जन—

अ	अधोष, अल्पप्राण, दंतमूलक, स्पर्श-संघर्षी चूर = खटमल,
च	चूठ = सेव, चास = खांसी
छ	अधोष, महाप्राण, दंतमूलीय, स्पर्श-संघर्षी छुल = छल, लछु = धूल,
ल	लांछु = नपुंसक
ज	अधोष, महाप्राण, दंतमूलीय, स्पर्श-संघर्षी जंग = टांग, जान = परिचय, रख = रस्सी

(क) अत्यत्प्रसिद्ध (f) के लिए शब्द के अंतिम वर्ण को अद्वैत बनाकर उसके साथ 'य' जोड़कर काम चलाया गया है। जैसे—पृथ्वी, खात्म्य, वार्त्य, आदि।

(ख) कश्मीरी में प्रायः सघोष वर्णों तथा—घ, क्ष, ढः घ, भ आदि का प्रयोग विलक्षण नहीं होता। अतः इनका प्रयोग लिप्यन्तरण में नहीं हुआ है। घन को दन, धार को दार, भगवान को बगवान आदि लिखा गया है।

आशा है कि हिन्दी के पाठकों को उपर्युक्त विभिन्न मात्रा-चिह्नों की मदद से कृश्मीरी का सही पाठ करने में सफलता मिल जायेगी।

ललदयद्

कश्मीर की आदि कवयित्री की काव्य-संग्रह

नागरी लिपि में, (हिन्दी गद्य एवं संस्कृत पद्धयानवाद सहित)

लल ब्रु द्रायस लोलरे

छांडान लूसुम दयन क्योह राथ ।

वृद्धम पंडिथा पननि गरे,

सुय मै रोटमस नैछतुर त साथ ॥ १ ॥

लल्लाहं निर्गता दूरम्

अन्वेष्टं शंकरं विभम् ।

भ्रान्त्वा : लब्धो मया स्वस्मिन्

देहे देवो गृहे स्थितः ॥ १ ॥*

मैं लल प्रेम से उस परमशक्ति को ढूँढने के लिए घर से निकल पड़ी । ढूँढते-ढूँढते रात-दिन बीत गये । अंत में देखा वह पंडित (इष्ट) तो ही घर में विद्यमान् है । बस, तभी से मेरी अन्तर्साधना का उचित निकल आया ॥ १ ॥

गौरन वौनुनम कुनुय वच्चुन,
नैबरु दौपनम अन्दरुय अच्चुन ।
सुय मै ललि गव वाख तु वच्चुन,
तवय मै ह्यौनुम नंगय नच्चुन ॥ २ ॥

बहिरङ्गाद् अन्तरङ्गं स्वं
प्रविशेति गुरुर्जगौ ।
कायान्तरम् अनेनाभूद्
विवस्त्रा नत्तने रता ॥ २ ॥ ४६

गुरु ने मुझे एक ही वचन की दीक्षा दी—बाहर से भीतर (अन्दर) चली जा । इसी एक वचन ने मेरी काया पलट दी और मैं नंगी (विवस्त्र) नाचने लगी ॥ २ ॥

लल बु लूसुस छाँडान तु गारान,
हल मै कौरमस रसुनि शेतिय ।
वुछुन ह्यौतमस तोर्य डीठ्यमस बरन,
मै ति कल गनेयि जोगमस तत्य ॥ ३ ॥

द्रष्टुं विभुं तीर्थवरानगताहं
श्रान्ता स्थिता तद्गुणकीतनेषु ।
ततोऽपि खिन्नास्मि च मानसेन
स्वान्तर्निविष्टा खलु तद्विमर्शे ॥ ३ ॥ ४७

मैं लल उस (परमशक्ति) को ढूँढते-ढूँढते और खोजते-खोजते मुरझा (थक-हार) गयी । फिर भी मैंने अपनी सामर्थ्यनुसार उसे खोजने हेतु शत-शत जोर और लगाये । जब निकट पहुँचकर उसे देखने लगी तो पाया कि उसके किवाड़ों में कुंडी लगी हुई है । (मैंने फिर भी हिम्मत नहीं हारी) मेरी जिज्ञासा बढ़ती ही गयी और मैं वहीं पर उसकी ताक में बैठ गयी ॥ ३ ॥

लल बु च्रायस सौमन बागु बरस,
वुछुम शिवस शखुथ मीलिथ तु वाह ।
तत्य लय करुम अमर्यत सरस,
जिदय मरस तु मै करि क्याह ॥ ४ ॥

ललाहं गता यावन्मानसाराम द्वारकम् ।
विलोकितस्तदा शक्त्या शिवो विलसितो मया ।
स्वात्मा निमज्जितस्तोषात् तस्मिन् पीयूषपुष्करे ।
ज्ञेयन्तीव मृता तावत् किं कुर्या विवशा सती ॥ ४ ॥

मैं लल जब स्वमन रूपी बाग के द्वार पर पहुँची तो देखा कि (भीतर) शिव शक्ति से मिले हुए हैं । आनन्द-मन होकर मैंने अपने आपको (परमात्मा रूपी) अमृत-सर में लय कर दिया । अब अगर मैं जीते जी भर भी जाऊं तो मुझे कोई चिंता नहीं ॥ ४ ॥

गौरु कथ हृदयसमंज बाग इटुम,
गंगु जल नाविम तन तु मन ।
सौदीह जीवन मौरवतय प्रोवुम,
यमु बयि चोलुम पोलुम अरत ॥ ५ ॥

गुरोर्गिरं गीर्णवती निजान्तरे
गङ्गाम्भसा धौतवती निजां तनुम् ।
एकं शिवं प्राप्तवती यदा तदा

मुक्ता मुदा मृत्युभयात् स्वजीवने ॥ ५ ॥

गुरु की बात (शिक्षा) को मैंने बीच हृदय में धारण कर लिया । गंगाजल से इस तन और मन को धो डाला । तब जीते-जी इस जीवन से मुक्ति प्राप्त कर ली और यम का भय सहते (परवाह न करते) हुए एक (शिव) को अपना बनाया ॥ ५ ॥

कलन कालु जात्य योद्वय ज्ञे गोल;
वैन्दिव गिह वा वैन्दिव वनवास ।
जानिथ सरवुगथ प्रौद्धो अमौल;
युथुय जान्यख त्युथुय आस ॥ ६ ॥

कालजालेन साकं चेत् कलना-विलयो भवेत्,
तदा गृही वा वनवासी भवत्वं नाक-बन्धनम्।
जानीहि सर्वं नाथममलं सर्वतो मुखम्,
तदा ज्ञानानुरूपं ते रूपं भावीति निश्चयः ॥ ६ ॥

काल के जाल (काल-चक्र) के साथ-साथ (रे मनुष्य !) यदि तेरी
कलाएँ (इच्छाएँ) भी मिट जाएँ तो चाहे फिर तू वनवासी बने या
गृहस्थ, कोई अन्तर नहीं पड़ता । बस, इतना जान ले कि प्रभु सर्वात
और निर्मल है । जैसा उसको समझेगा वैसा ही तुझे प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

आयस वते गंयस नु वते,
सुमन सौथि मंज लूसुम दौह ।
वन्धस वुछुम तु हार नु अथे,
नावि तारस दिमु क्या बो ॥ ७ ॥

समागता सरलपथेन विश्वे
निवर्त्तने राजपथो न विद्यते ।
अस्तंगते दिनकरे स्वकरे न वैय
यायां कथं निधनपारमपारतोयम् ॥ ७ ॥

(इस संसार में) मैं सीधी राह से तो आ गयी किन्तु (मोह-माया से
पड़कर) यहाँ से सीधी राह से लौट न पाई । अभी बीच सेतु से गुजर और किस मार्ग से (वापस) जाऊँगी, यह भी नहीं जानती । (दिशा-बोध
ही रही थी कि दिन ढल गया । (साधना रूपी कमाई की) जेवमें हाथ
डाला तो देखा वहाँ एक कौड़ी भी नहीं । अब भला पार उतरने के लिए
(नाविक को) दूँ तो क्या दूँ ? ॥ ७ ॥

असि पौंदि जौसि जामि,
स्यथुय सनान करि तीरथन ।
वुहूर्य वंहरस नौनुय आसे,
निशि छुय तु परज्जनावतन ॥ ८ ॥

स्नातं हसन्तं विविधं विधेयं
कुर्वन्तमेतत्पुर एव सन्तम् ।

पश्यात्मदेवं निजदेह एव
कृतं प्रदेशान्तरमार्गणेन ॥ ८ ॥

(रे मनुष्य ! यह शिव ही है जो) तेरे भीतर (कभी) हँसता है,
कभी छोंकता है, कभी अंगड़ाइर्या लेता है और कभी खाँसता है । वह
नित्य (तेरे मन के संकल्प-विकल्प रूपी विचारों के) तीर्थों पर स्नान करता
है । वर्षभर निर्वसन रहता है । (तेरा शरीर ही उसका वसन है)
अर्थात् वह तेरे भीतर (पास) है, उसे (रे मनुष्य !) तू ढूँढ़ ले ॥ ८ ॥

आयस कमि दिशि तु कमि वते,
गछु कमि दिशि कवु जानु वथ ।

अनति दाय लगिमय तते,
छैनिस फौकस कांह ति नो सथ ॥ ९ ॥

क्या दिशा केन पथागताहं
पश्चाद्गमिष्यामि पथाऽथ केन ।

इत्थं गर्ति वेचि निजां न तस्मात्
उच्छ्वासमावेण धृति भजामि ॥ ९ ॥

मैं किस दिशा और किस मार्ग से आई, नहीं जानती । किस दिशा
और किस मार्ग से (वापस) जाऊँगी, यह भी नहीं जानती । (दिशा-बोध
हो सकता है) जब अन्ततः मुझे कोई सत्परामर्श दे । क्योंकि मात्र
साधन (योग, प्राणायाम आदि) पर अवलंबित रहने में कोई सार
॥ ९ ॥

आसा बोल कडिन्यम सासा,
मै मनि वासा खीद ना हेये ।
बौ योद सहजु शंकरु बंखुन्न आसा, ११
मंकरिस सासा मल क्या पेये ॥ १० ॥

अवाच्यानां सहस्राणि

कथयन्तु न मन्मनः ।
मालिन्यम् एत्युदासीनं
रजोभिर् मुकुरो यथा ॥ १० ॥*

मेरे लिए चाहे कोई अपने मुँह से हजार गालियाँ भी क्यों न निकाले,
मेरे मन के वासी को (आत्मा को) उससे किसी तरह का खेद नहीं
पहुँचेगा । मैं अगर सहज (स्वात्म) शंकर की भक्त हूँ तो भला मेरे
मन-दर्पण पर मैल कैसे जम सकती है ? ॥ १० ॥

कंद्यव गेह तैज्य कंद्यव वनवास,
वैफौल मन ना रंटिथ तु वास ।
द्यन राथ गंजरिथ पनुन श्वास,
युथुय छुख तु त्युथुय आस ॥ ११ ॥

कति गता गहनं गृहत्यागिनो
विफलिता अवशीकृतमानसाः ।
विगणयन्निज प्राण परिक्रियां
परिलभस्व सदा निजतोषणम् ॥ ११ ॥

कह्यों ने घर त्याग दिए और वनवास करने लगे । किन्तु तब तक
यह सब विफल है जब तक कि (चंचल) मन को वश में नहीं किया जाता ।
(रे मनुष्य !) तू दिन-रात (ध्यानपूर्वक) अपने श्वासोच्छ्वास की गिनती
कर अर्थात् अपने जन्म को बहुमूल्य समझ कर उसकी रक्षा कर । तू जिस
स्थिति में है, उसी से संतुष्ट रह ॥ ११ ॥

लद्दयद
कैह छी नेंदरि हंती वुदी,
कैञ्जन वृद्यन न्यसर कौयी ।
कैह छी सनान कंरिथ अपुती,
कैह छी गैह बंजिथ ति अक्री ॥ १२ ॥

कश्चित् प्रसुप्तोऽपि विबुद्ध एव
कश्चित् प्रबुद्धोऽपि च सुप्ततुल्यः ।
स्नातोऽपि कश्चिद्वशुचिर्मतो मे
मुक्त्वा स्वयं चाप्यपरः सुपूतः ॥ १२ ॥*

कुछ (व्यक्ति ऐसे होते हैं जो) निद्रामग्न होकर भी जागृत रहते हैं ।
कुछ जागृत होने पर भी निद्रामग्न रहते हैं । कुछ स्नान करने पर भी
अपविन्न ही रहते हैं तथा कुछ घर (गृहस्थी) करने पर भी अक्रिय अर्थात्
निर्लिप्त रहते हैं ॥ १२ ॥

क्याह करु पाँचन दंहन तु कहन,
बौखशुन यथ लैजि कंरिथ यिम गंये ।
सारी समुहन यथ रजि लमुहन,
अदु क्याजि राविहे कहन गाव^१ ॥ १३ ॥

पञ्च चैव विकारा दश तथैकादश संख्यकाः ।
गता विहाय मे देहं भिन्न-भिन्नानुमार्गंगाः ।
यदि ते गां हि कर्षेयुरेक मार्गानुसारतः ।
अहो मदीया धी-धेनुः कथं भूयात् कुमारंगा ॥ १३ ॥

इन पाँच (तत्त्वों), दस (विकारों) और ग्यारह (पाँच कर्मन्द्रियाँ,
पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन) का क्या कहूँ । ये सब मेरी हंडिया
(देह) को खाली कर गये । (सभी भिन्न दिशाओं की ओर जा रहे हैं)
काश ! ये सभी मिलकर एक ही दिशा में रस्सी को खींचते तो भला फिर
ग्यारह की देखरेख रहते भी गाय कैसे भाग सकती थी ? ॥ १३ ॥

^१ 'कहन गाव रावन्य' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है अत्यधिक सावधानी के बाद
किसी चीज का खो जाना । मुहावरे का शाब्दिक अर्थ है—ग्यारह (व्यालों) की
रिक्ष से गाय का भाग जाना ॥ १४ ॥

कुश पोश तेल दुक जल ना गँठे,
सदबावु गौरु कथ युस मनि हँये ।
शम्बूहस सौरि नैत्य पनुनि यैछे,
सोय दपिजे संहूजु अक्रोय ना जैये ॥ १४ ॥

पुष्पादिकं द्रव्यमिदं न तस्य
पूजासु सर्वमुपयोगि किञ्चित् ।
गुरुपवेशाद् दृढया च भक्त्या
स्मृत्याचर्यते येन विशुद्ध आत्मा ॥ १४ ॥*

(साधना के लिए) कुशा, तेल, दीप, जल आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। सदभाव से जो गुरु की बात मन में उतारे और नित्य भावना के शंभु का स्मरण करे, वह कर्म-दंधन से मुक्त हो कर सहज-आनन्द में तल्लीन हो जाता है ॥ १४ ॥

छयथ गंडिथ शैमि ना मनस,
ब्रांथ यिमव त्रांव तिमय गंयि खंसिथ ।
शास्तुर बूज्जिथ छु यमु बयि कूर,
सु ना पौत्र तु दंनी लंसिथ ॥ १५ ॥

खादनाद् भूषणाद्वापि
मनो यस्य गतभ्रमम् ।
स मुक्तो नोत्तमण्डियो
गृह्णात्यर्थं हि सोऽनृणः ॥ १५ ॥*

(मात्र) खाने और पहनने से मन को शांति नहीं मिलती। जिन्होंने मिथ्या आशाओं को त्याग दिया, दरअस्ल वही उन्नति के शिखर पर चढ़ गये। शास्त्र सुन-सुनकर यम-भय बड़ा कूर दिखने लगता है। जो हन और मैं जान गयी कि स्व-प्रकाश मेरी देह में ही स्थित है। तब मैंने शास्त्रों के चक्कर में नहीं पड़ा अर्थात् जिसने उधार नहीं लिया, वही धनी है। ध्यानपूर्वक प्रकाश को स्थिर किया और नित्य सुख प्राप्त करने आनन्द का भागीदार है ॥ १५ ॥

र्यानुक्य अम्बर लागिथ तने,
यिम पद ललि दंप्य तिम हृदि अख ।
कारुन्य प्रनावुक्य लय कौर लले,
त्रयथ जोति कोसुन मरनुन्य शंख ॥ १६ ॥

ज्ञानाम्बरेण परिभूषय भो! निजाञ्जन्
लल्लोक्त पावनपदेश्च विभूषयान्तः ।
एवं यथा लल्ल गता स्वरूपं
तथैव ते मरणभयं विधूयते ॥ १६ ॥

(ऐ मनुष्य ! तू) तन पर ज्ञान के अम्बर (वस्त्र) धारण कर, लल्ल ने जो पद कहे, उन्हें अपने हृदय में उतार। ऐसा करने से जिस प्रकार लल्ल (परम-शिव में) लौन हो गयी, उसी प्रकार तेरे चित्त में भी ज्योति उत्पन्न होगी और मरण की शंका लुप्त हो जाएगी ॥ १६ ॥

अभ्यास किनिय व्यकास फौलुम,
सौं प्रकाश जोनुम यिहोय दीह ।
प्रकाश ज्ञान मौरव यी दोरुम,
सौंख्य बौरुम कोरुम तिय ॥ १७ ॥

अभ्यासतोऽन्तर्जले नलिनं प्रफुल्लं
ज्ञातं मया स्वभवने स्फुरति प्रकाशः ।
कृत्वा प्रकाशमचलं निजध्यानयोगात्
शश्वत्सुखे सततमरनमना अभूवम् ॥ १७ ॥

अभ्यास से मेरे हृदय में (आत्म-ज्ञान रूपी) कमल विकसित हुआ गये। ध्यानपूर्वक प्रकाश को स्थिर किया और नित्य सुख प्राप्त करने लगी ॥ १७ ॥

ललि मैं दोपुख लूख हांड करनय,
तवय चंजिम मनय शेंख ।
माग नोवुम नार ओलुम,
कुहिन्य कोसम मनय शेंख ॥ १५ ॥

लल्ले जनास्तव विलोक्य विचित्रवेषं
निन्दारता इति मुहुः सुजना अबोचन् ।
तेनागमद् गोपनभाव आत्मनः
शीतोष्णशोधिततया विमलं मनोऽभूत् ॥ १६ ॥

साधनावस्था में देख मुझे कई विचारवानों ने कहा कि लल, तुझे लोग
पीड़ा पहुंचायेंगे, तेरी निदादि करेंगे । मगर, इससे मेरे मन का दुराव और
दूर हुआ । माघ मास की सर्दी से अपने तन को नहलाया और गर्मी को
सहन किया, तब जाकर मन की काली इच्छाएँ समाप्त हो गयीं ॥ १६ ॥

गगन चुय भूतल चुय,
चुय द्यन पवन तु राथ ।
अरुग चंदन पोश पोन्य चुय,
चुय छुख सकलय तु लाग्यजि क्याह ॥ १७ ॥

आकाशो भूर्वायुरापोऽनिलश्च
रात्रिश्चाहश्चेति सर्वं त्वमेव ।
तत्कार्यत्वात्पुष्पमधादि च त्वं
त्वत्पूजार्थं नैव किंचिल्लभेऽहम् ॥ १८ ॥

तू ही गगन, भूतल भी तू ही । तू ही दिन, पवन और रात ।
अर्ध्य, चंदन, पुष्प, पानी भी तू ही । तू ही सब कुछ है, तो फिर
तुझे क्या चढ़ाऊँ ? ॥ १९ ॥

गाटुलाह अख वुछुम बौछि सूत्य मरान,
पन जन हरान पुहनि वावु लाह ।
नैश बौद अख वुछुम वाजस मारान,
तनु लल्ल बौ प्रारान छोन्यम ना प्राह ॥ २० ॥

यथा पौषस्य वातेन पत्रहीनो भवेत् तरुः ।
तथैव देहहीनोऽभूजनो बुद्धो बुभुक्षया ।
अन्यच्च पाचको दृष्टस्ताडचमानः कुबुद्धिना ।
लल्लाहं तत्प्रतीक्षेनु भवबन्ध विमोक्षणम् ॥ २० ॥

(मैंने) एक प्रबुद्ध को भूख से मरते देखा, मानो पौष-पवन (पतञ्जर)
से जर्जरित हो रहा हो तथा एक रसोइए को एक निर्बुद्धि से पिटले देखा ।
(इस विरोधाभास को देखकर) मैं लल उस क्षण की प्रतीक्षा करते लगी
जब मेरे भवबन्धन छूट जाएँ ॥ २० ॥

त्रु ना बौह ना दैय ना द्यान,
गव पानय सरवुक्रिय मंशिथ ।
अन्तो ड्यूठुख केह ना अनवय,
गयि सथ लयि पर पशिथ ॥ २१ ॥

त्वं नासि नाहं न च तत्रध्येयं
ध्यानं न तत्रास्तिच सर्वकारकः ।
पश्यन्ति नो तत्र च नेत्रहीना
शिवं विपश्यन्ति गुणाभिरामाः ॥ २१ ॥

वहाँ न तू है, न मैं हूँ, न ध्येय है और न ध्यान । सर्वक्रीय (सर्व-
कारक परब्रह्म) भी वहाँ खो जाते हैं । अन्धों को तो वहाँ कुछ नहीं
दिखता किन्तु सहज गुणियों को परमशिव के दर्शन हो जाते हैं ॥ २१ ॥

ज्ञामर छतुर रथु सिंहासन,
हलाद, नाट्य रस तूला परयंक।
क्याह मोनिथ यैति सिथुर आसुवुन,
कौजनु कासीय मरुनुन्य शंक ॥ २२ ॥

सिंहासनं चामरछवसंयुत
माह्लादकं मोहक भोगसाधनम् ।
किं तत् स्थिरं चिन्तयसि स्वसानसे
ज्ञातं, त्वया मरणभयं न ज्ञातम् ॥ २२ ॥

चैवर, छत्र, रथ, सिंहासन, आह्लाद, नाट्य-रस, रेशमी पर्यंक आदि
को (रे मनुष्य !) तूने क्या इस संसार में स्थिर माना है ? (ये सारे
ऐश्वर्य भोग के साधन अस्थिर हैं, स्थिर अगर कोई वस्तु है तो वह है) मरने
की शंका, जिसे तू भुला बैठा है ॥ २२ ॥

तूरि सलिल खोत ताय तूरे,
हिमि त्रै गंयि व्यन अव्यन विमरशा ।
ब्रयतनि रव बाति सब समय,
शिव मय ब्राच्चर जगपशा ॥ २३ ॥

मायाजाड्यं तज्जडं बोधनीरं
संसृत्याख्यं तद्वनत्वं हिमं च ।
चित्सूर्येऽस्मिन् प्रोदिते त्रीणि सद्यो
जाड्यान्मुक्तं नीरमाद्यं शिवाख्यम् ॥ २३ ॥*

सलिल को जब (अत्यधिक) शीत अभिभूत कर लेती है तो वह जम
जाता है अथवा हिम बन जाता है । विमर्श से काम लिया जाय तो इन
तीन रूपों (सलिल, जमने की क्रिया व हिम) में तत्वतः कोई भिन्नता (एक-सी (पाषाणमय) स्थिति है । (इसलिए) रे पंडित ! तू पूजा
नहीं है । जब चैतन्य (विवेकरूपी) सूर्य इन पर चमकेगा तो ये सब किसकी करेगा ? अतः अपने मन और पवन (प्राण) को एकीकृत कर
एक समान हो जाएंगे और तब बराबर जग शिवमय दिखाई देगा ॥ २३ ॥ देव (इसी में सार है) ॥ २३ ॥

दीहचि लरि दारि बर त्रोपुरिम,
प्रानु चूर रौटुम तु द्युतमस दम ।
हृदयिचि कूठुरि अन्दर गौंडुम,
ओमुकि चोबुकु तुलमस बम ॥ २४ ॥

सम्यङ्गनिरुद्धा निजकायमार्गा
मया गृहीतो हृदि प्राणचौरः ।
नावं चकाराति मुहुः प्रताङ्गित
ओङ्कारकायान्तु कशामिधातात् ॥ २४ ॥

अपने देहरूपी मकान की खिड़कियाँ व दरवाजे बंद कर मैंने उसमें
प्राणरूपी चोर को पकड़ लिया और उसे बंद कर दिया । फिर हृदय की
कोठरी में उसे बांधकर ओङ्ग के चाबुक से उसको पीट-पीटकर गुंजा
दिया यानी सहज नाव गूंज उठा ॥ २४ ॥

दीव वटा दिवुर वटा,
प्यठ बौन छु यीकुवाठ ।
पूज कस करख होटु बटा,
कर मनस तु पवनस संगाठ ॥ २५ ॥

चैत्यं देवो निर्मितौ द्वौ त्वया यौ
पूजाहेतोस्तौ शिलातो न भिन्नौ ।
देवोऽमेयश्चित्स्वरूपो विधेयं
तद्व्याप्त्यर्थं प्राणचित्तैक्यमेव ॥ २५ ॥*

देव भी पत्थर है और देवल (मन्दिर) भी पत्थर है । ऊपर नीचे
स्थिति है । (इसलिए) रे पंडित ! तू पूजा
किसकी करेगा ? अतः अपने मन और पवन (प्राण) को एकीकृत कर
देव (इसी में सार है) ॥ २५ ॥

दमी डीठुम गंज दजुवुनी,
दमी ड्यूठुम दुह न तु नार ।
दमी डीठुम पांडुवनहुंज माजी,
दमी डीठुम क्राजी मास ॥ २६ ॥

क्षणेन दृष्टं ज्वलितमृजीषं
क्षणेन नाग्निर्न च धूमरेखा ।
क्षणेन कुन्ती मुदिता पुनः शुचा
घटस्य कर्तुर्हि गृहं समाश्रिता ॥ २६ ॥

अभी जलता हुआ चूल्हा देखा, और अभी उसमें न धुआ देखा और न आग । अभी पांडवों की माता को देखा, और अभी उसे एक कुम्हारिन के यहाँ शरणागता मौसी के रूप में देखा । (समय के खेल को कोई नहीं जान सका है !) ॥ २६ ॥

दमी डीठुम नद वंहवुनी,
दमी ड्यूठुम सुम न तु तार ।
दमी डीठुम थेर फौलुवुनी,
दमी ड्यूठुम गुल न तु खार ॥ २७ ॥

सद्यो वहन्तीह नदी विलोकिता
न तव सेतुर्नंच तरणसाधनम् ।
विलोकिता पुष्पसमन्विता लता
पुनर्न पुष्पं नच कण्टकं ततः ॥ २७ ॥

अभी मैंने बहती हुई नदी को देखा, और अभी उसपर न कोई सेतु देखा और न पार उतरने के लिए पुलिया ही । अभी खिली हुई फूलों की एक डाली देखी, और अभी उसपर न गुल (सुमन) देखे और न काटे ॥ २७ ॥

दमी ड्यूठुम शबनम प्यवान,
दमी ड्यूठुम प्यवान सूर ।
दमी डीठुम अनिगटु रातस,
दमी ड्यूठुम दौहस नूर ॥ २८ ॥

तौहारविन्दुपतनेन निरीक्षिता श्रीः
तत्रैव नेत्रपथगस्तु हिमप्रपातः ।
जाता विकारवशगा तमसा तमिक्षा
दृष्टस्तदैव दिवसे मधुरः प्रकाशः ॥ २८ ॥

अभी शबनम को गिरते देखा और अभी पाला पड़ते देखा । अभी रात में अन्धकार को देखा और अभी दिन में नूर (प्रकाश) देखा ॥ २८ ॥

दमी आसुस लौकुट कूरा,
दमी सपनिस जवां पूर ।
दमी आसुस फेरान थोरान,
दमी सपनिस दजिथ सूर ॥ २९ ॥

प्रागहं बालिकाऽभूवं
पश्चाद् यौवनशालिनी ।
अहो गतिमती शूत्वा
साम्प्रतं भस्मतां गता ॥ २९ ॥

अभी मैं एक छोटी लड़की थी और अभी पूरी जवान बन गयी ।
अभी मैं चलती-फिरती थी और अभी जल कर राख हो गयी ॥ २९ ॥

नाबुद्य बारस अटु गंड ड्योल गोम,
 देह कान हौल गोम ह्यकु क्यहो ।
 गौरु सुंद वनुन रावन त्योल प्योम,
 पहलि रौस छ्योल गोम ह्यकु क्यहो ॥ ३० ॥

अद्यावधि सिताभारोधूतोऽग्रे धार्यते कथम् ।
 धनुर्वण्डसमोदेहो भूर्नो भारोहि वाधते ।
 न रुचितो गुरुनिर्वेशः सावहेलं पृथगता ।
 अधुना हन्त दिङ्मूढा यथाऽजा पालकं विना ॥ ३० ॥

(जिस) मिश्री (सांसारिक सुख-संपदाओं) की गठरी (मैं कन्धे पर ढो रही थी उस) की गाँठ ढीली पड़ गयी। देह कमान के समान झुक गयी। अब भला यह भार कैसे वहन कर सकूँगी। ऊपर से गुरुपदेश को भी कड़ुआ जानकर अवहेलना की। अब तो मेरी हालत गड़िरिए के बिना रेवङ्ग (भेड़ों के समूह) की जैसी हो गयी है। भला यह भार अब कैसे वहन कर सकूँगी ! ॥ ३० ॥

नाथा ! ना पान ना पर जोनुम,
 सदाय बोदुम यि कौं दिह ।
 चु बो बो चु म्युल नो जोनुम,
 चु कुस बो कौसु छु संदिह ॥ ३१ ॥

नाथ न त्वं न चात्मापि
 ज्ञातो देहाभिमानतः ।
 स्वस्यैवं च त्वया तेन
 का आवामिति संशयः ॥ ३१ ॥*

हे नाथ ! न मैंने (कभी) अपने (स्व) को और न (कभी) पर को जानने की कोशिश की। सदैव इस कुदेह की चिता करती रही। तू मैं, और मैं तू—इस मेल को भी कभी न जान सकी। मैं तो इसी सन्देह में पड़ी रही कि तू कौन और मैं कौन ! ॥ ३१ ॥

नियम कर्योथ गरबा,
 ज्यतस कर बा पैयी ।
 मरुनु ब्रोंठुय मर बा,
 मरिथ तु मरतबु हुरी ॥ ३२ ॥

गर्भवासे प्रतिज्ञातं
 विस्मृतं किन्तु कारणम् ।
 भव जीवन्मृतो येन
 पद्यसे परमं पदम् ॥ ३२ ॥

गर्भवास में (तुने रे मनुष्य !) (आंत्म-चितन का जो) नियम पाला था, उसे तू भूल क्यों गया ? (अभी भी मौका है) तू मरने से पहले ही मर जा क्योंकि मर के ही मरतबा (पद, यश) बढ़ता है ॥ ३२ ॥

प्रथुय तीरथेन गङ्गान संन्यासं,
 गारान सौदरशनु म्यूल ।
 चित्ता परिथ मव निशपथ आस,
 डेशख दूरे द्रमुन म्यूल ॥ ३३ ॥

यत्नेन मोक्षैकधियः सदामी
 संन्यासिनस्तीर्थवरान् प्रयान्ति ।
 चित्तैकसाध्यो न स लभ्यते तै-
 द्रूपस्थितं भास्यतिनीलमारात् ॥ ३३ ॥*

(परब्रह्म के) सुदर्शन हेतु संन्यासी प्रत्येक तीर्थ में जाता है। (पर उसे नहीं मालूम कि परब्रह्म उसके चित्त में ही है) रे मनुष्य ! तू अपने चित्त को पढ़ और इस निष्पथ (तीर्थाटन आदि) को त्याग दे। तीर्थयात्रा द्वूर से घास का नीला दिखने के बराबर है (अर्थात् द्वूर के ढोल सुहावने वाली बात है) ॥ ३३ ॥

स्नान तय द्यान क्याह सन करिय,
च्यतस रठ त्रकरुय वग ।
मनस तु पवनस मिलवन कर, १५२
सहजस मंज कर तिरथ स्नान ॥ ३४ ॥

स्नानेन ध्यानेन कथं भविष्यति
कार्यस्य सिद्धिरवशीकृतात्मना ।
प्राणस्य मनसा सह योजनेन
सहजस्वरूपे कुरु स्नानमन्त्र ॥ ३४ ॥

V.V. ३४
स्नान और ध्यान से भला क्या होगा ! तू अपने चित्त की
लगाम को जरा मजबूती से पकड़ । मन और पवन को मिला दे तथा
सहज (परम शिव) के तीर्थ में स्नान कर ॥ ३४ ॥

पानस लागिथ रुदुख मे चु,
मे चे छांडान लूसुभ दौह ।
पानस मंज यैलि इयूरुख मे चु, १५५
मे चे तु पानस द्युतुम छोह ॥ ३५ ॥

वेहादिष्टकोशपिधानतस्त्वा-
मप्राप्य खिन्नास्मि चिरं महेश ।
उपाधिनिमुक्तविदोधरूपं
ज्ञात्वाद्य विधान्तिमुपागताऽहम् ॥ ३५ ॥*

तुम मेरे भीतर छिपे रहे और मैं तुम्हें दिन-रात (बाहर) कुंक्षी
रही । (जिस दिन) तुम्हें अपने भीतर छिपा पाया (उस दिन से) मूँहे
अभिन्नत्व का बोध हो गया और मैं आनंदमग्न होकर झूम उठी ॥ ३५ ॥

पर ताय पात यैम्य सौम मोन,
यैम्य ह्युव मोन द्यन क्योह राथ ।
यैम्यसुय अदुय मन सांपुन, १६५
तंभी इयूरुय सुरु गुरु नाथ ॥ ३६ ॥

आत्मा परो दिनं रात्रिर्यस्य सर्वमिदं सम्भ ।
भातमद्वैतमनसस्तेन दृष्टोऽमरेश्वरः ॥ ३६ ॥*

जिसने पर और स्व को समान माना, जिसने दिन और रात को एक
सात्त्वा, जिसका मन अद्वय बन गया, उसी ने सुरगुरु नाथ (अमरेश्वर) के
दर्शन किये ॥ ३६ ॥

ब्रोंठ कालि आसन तिथी केरन,
टंग चूँठ्य पपन ज्ञेरन सूत्य ।
माजि कोरि अथुवास कंरिथ नेरन, १७६
दौह द्यन बरन परद्यन सूत्य ॥ ३७ ॥

आगामि - कालस्य कुलक्षणं यत्
कालानपेक्षी फलपाकयोगः ।
वास्यति स्वकर्त्यां परकामुकाय
जननी धनार्थं न जुगुप्सितं स्यात् ॥ ३७ ॥

आने वाले समय के (कलियुग के) लक्षण कुछ ऐसे होंगे कि नाश-
प्राप्तियाँ और सेव-खूबानियों के साथ पकेंगे (यद्यपि दोनों भिन्न मौसम में
समक्ष हैं) और माताएँ (अपनी) पुत्रियों के संग बाहों में ब्राह्मे डाले गैरों
के यही दिन बिताएंगी ॥ ३७ ॥

वान गोल ताय प्रकाश आव जूने,
चंद्रुर गोल ताय मौतुय उयथ ।
उयथ गोल ताय केह ति ना कुने,
गंय बूर बुवह सौर व्यसरजिथ क्यथ ॥ ३८ ॥

भानौ नष्टे काशते चन्द्रबिम्बं
तस्मिन्नष्टे काशते चित्तमेव ।
चित्ते नष्टे दृश्यजातं क्षणेन
पृथ्व्यादीदं गच्छति क्वापि सर्वम् ॥ ३९ ॥*

भानु (सूर्य) के गलने पर चन्द्रमा में प्रकाश आता है। चन्द्र के गलने पर चित्त प्रकाशित हो जाता है। चित्त के गल जाने पर कहीं कुछ नहीं रहता तथा 'भूर्भुवःस्वः' अस्तित्व-शृण्य हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

कुस डिगि तु कुस जागि,
कुस सर वतरि तेलि ।
कुस हरस पूजि लागि,
कुस परम् पद मेलि ॥ ३९ ॥

सुष्टः कः कः प्रबुद्धश्च
कि सरो यन्तु रिष्यति ।
कंक वस्तु यद् हरस्याच्यं
प्राप्य कि परम् पदम् ॥ ३९ ॥

कौन सोया हुआ है और कौन जागा हुआ है? वह कौन-सा सरोवर है जिससे बूद-बूद रिसती है? वह कौन-सी वस्तु है जो हर (शिव) के लिए पूजनीय है? वह कौन-सा परमपद है जो (साधनोपरान्त) प्राप्य है? ॥ ३९ ॥

मन डिगि तु अकौल जागि,
दोङ्गिय सर पंचुयिदरिय वतरि तेलि ।
सौव्यज्ञारु पोन्य हरस पूजि लागि,
परम् पद चेतनु शिव मेलि ॥ ४० ॥

सुष्टं मनो जागरणं तदात्मनः
सरो निरुद्धेन्द्रियपञ्चकं स्वेत् ।
शिवाभिषेको हि जलेन तेन
शिवोपलविधहि परं पदं स्यात् ॥ ४० ॥

जब मन सो (तल्लीन हो) जाता है तो 'अकूल' अर्थात् अन्तरात्मा जागृत हो जाती है। सुदृढ़ रहने वाली पंचेन्द्रियों से उसपर स्वात्म-चित्तन के जल की पूजा होती है और तब शिव-चंतन्य का परमपद मिलता है ॥ ४० ॥

मंकरिस मल जन चौलुम मनस,
अदु लंबुम जनिस जान ।
सु येलि डयूठुम निशि पानस,
सोरुय सुय तु बु नो केह ॥ ४१ ॥

चित्तादर्शं निमंलत्वं प्रयाते
प्रोद्भूता मे स्वे जने प्रत्यभिज्ञा ।
दृष्टो देवः स्वस्वरूपो मयासौ
नाहं न त्वं नैव चायं प्रपञ्चः ॥ ४१ ॥*

जब मेरे मन-दर्पण की मैल धुल गई तो मुझे आत्म-ज्ञान हो गया तथा उसे (शिव को) अपने में ही स्थित पाया। मैंने देखा कि वही सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं ॥ ४१ ॥

कुस पुश तु कौसु पुशानी,
कम कुसुम लाग्यज्यस पूजे ॥
कवु गोड दिज्यस जलुचि दानी, ६०
कवु सनु मन्तुरु शंकर स्वात्मु वुजे ॥ ४२ ॥

कः पौष्टिकः कापि च तस्य पत्नी
पुष्पैश्च कैर्देववरस्य पूजा ।
कार्या तथा किं गडुकं विधेयं
मंत्रश्च कस्त्रव वद प्रयोज्यः ॥ ४२ ॥*

माली कौन ? और मालिन कौन ? कौन से कुसुम उसकी पूजा में चढ़ाओगे ? किस जल से उसका अभिषेक करोगे ? और वह मत्र कौन-सा है जिससे स्वात्म-शंकर के लिए प्रयोज्य (अभिमंत्रण योग्य) है ? ॥ ४२ ॥

मन पुश तय यछु पुशानी,
बावुक्य कुसुम लाग्यज्यस पूजे ।
शेशि रसु गोडु दिज्यस जलु दानी,
छोपि मन्तुरु शंकर स्वात्मु वुजे ॥ ४३ ॥

इच्छामनोभ्यां ननु पौरि -भ्या-
मादाय पुष्पं दृढभावनाख्यम् ।
स्वानन्वपूर्वर्गडुकं च दत्त्वा
मौनाख्यमन्त्रेण समर्चयेशम् ॥ ४३ ॥*

मन माली और जिज्ञासा मालिन । भाव-कुसुमों से उसकी पूजा करना । शेशिरस (अमृत जल) से उसका अभिषेक करना और तब मौन रूपी मंत्र-जाप से स्वात्म-शंकर की आराधना करना ॥ ४३ ॥

मत्र वौंदि जोलुम,
जिगर मोरम ।
तैल लल नाव द्रास, १६८
येल दल्य लाव्यमस तंत्य ॥ ४४ ॥

ततोऽत्र दृष्ट्वावरणानि भूयो
ज्ञातं मयात्रैव भविष्यतीति ।
भड्कत्वा यदा तानि च संप्रविष्टा
ललेति लोके प्रथिता तदाहम् ॥ ४४ ॥*

७.५

(जब): मैंने हृदय की सारी मैल जला डाली, जिगर (इच्छाओं),
को भी मास्ट डाला और उनके द्वार पर अंचल पसारे जमकर बैठ गई,
तब कहीं जाकर मेरा लल नाम प्रसिद्ध हो पाया ॥ ४४ ॥

मारुख मारुबोथ काम क्रूद लूब,
नतु कान बरिथ मारुनय पान ।
मनय ख्यन दिख स्व व्याज्ञारु शम,
विशय तिहुंद क्याह क्युथ द्रूव जान ॥ ४५ ॥

काम क्रोधादिकान् शक्तन्, नाशयात्मविनाशकान् ।
सद्विचारेण ते शान्ति गमिष्यन्ति न संशयः ।
विषयाः सन्ति के तेषां दृढं सम्यग् विचारय ।
एवं कृतप्रयत्नस्त्वं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ४५ ॥

काम, क्रोध और लोभ धातक हैं, (रे मनुष्य !) इनको मारकर समाप्त कर दे, अन्यथा ये तुम्हें ही अपने तीरों से मार देंगे । इन्हें सुविचारों के खाद्य द्वारा शांत स्थिति में ले आ और उनके विषय क्या हैं, यह दृढ़ता से जानने की कोशिश कर ॥ ४५ ॥

मूढ़ जानिथ पश्थिथ ति कोर,
कौल श्रुत वौन जडुरुफ आस ।
युस यि दपी तस ती बोल, ११२
यिहोय तत्वु विदिस छु अभ्यास ॥ ४६ ॥

ज्ञात्वा सर्व मूढवत्तिष्ठ स्वस्थः
श्रुत्वा सर्व श्रोत्रहीनेन भाव्यम् ।
वृष्ट्वा सर्व तूर्णमन्धत्वमेहि
तत्त्वाभ्यासः कीतितोऽयं बुधेन्द्रैः ॥ ४६ ॥*

(रे मनुष्य ! तू) जानते हुए भी मूढ़ बन, देखते हुए भी चक्षुहीन बन, सुनते हुए भी बहरा बन और जागृत होते हुए भी जड़-रूप बन। जो ज़ंसा कहे उसके साथ वैसा ही बोल। यही तत्त्वविद् का अभ्यास है ॥ ४६ ॥

यथ सरस सिरि कौल ना वेच्ची,
तथ सरु सकली पोन्य च्यन ।
मृग सृगाल गंड्य जलु हसती, ११६
ज्यन ना ज्यन तु तौतुय प्यन ॥ ४७ ॥

सरोवरे यत्र न सर्षपस्य
कणोऽपि मात्येव विच्चित्रमेतत् ।
विवर्धते तत्परसा समस्तं
यावत्प्रमाणं खलु देहिजातम् ॥ ४७ ॥*

(कैसी विडम्बना है कि) जो सरोवर चावल के एक दाने तक को अपने में समा नहीं सकता अर्थात् सुरक्षित नहीं रख सकता, उसी सरोवर के पानी से सबकी व्यास बुझती है। (मृग, सृगाल, गंडा और जलहस्ति आदि) सब इसी जल से उत्पन्न होते हैं और इसी में समा जाते हैं। (इस संसार में सब-कुछ नश्वर है) ॥ ४७ ॥

यवु तूर ब्रलि तिम अम्बर ह्यता,
ख्योद यवु गलि तिम आहार अन ।
ज्यता सौ परव्यञ्चारस प्यता,
ज्यनतन यि देह वन कावन ॥ ४८ ॥

शीतार्थं वसनं ग्राह्यं क्षुधार्थं भोजनं तथा । ११७
मनो विवेकितां नेयमलं भोगानुचिन्तनैः ॥ ४८ ॥*

ठंड दूर करने के लिए अम्बर (वस्त्र) धारण करे; क्षुधा मिटाने हेतु आहार ग्रहन कर ले। रे चित्त ! किन्तु (जिससे तुझे आनंद की प्राप्ति हो) उस स्व और पर का विचार कर, चित्तन कर ले, नहीं तो अंत में तेरी यह देह वन्य कौओं का आहार बनेगी ॥ ४८ ॥

यि यि करुम कौरुम सु अरञ्जुन,
यि रसनि व्यञ्चोरुम ती मंथुर । ११८
यौहय लौगमो दिहस परञ्जुन,
सुय यि परमु शिवुन तंथुर ॥ ४९ ॥

करोमि यत्कर्म तदेव पूजा
वदामि यच्चापि तदेव मंत्रः ।
यदेव चायाति तथैव योगाद् ११८
द्रव्यं तदेवास्ति ममात्र तन्त्रम् ॥ ४९ ॥*

मैंने जो-जो कर्म किए वही मेरी अर्चना है, जो रसना (जीभ) से परिचय-प्रत्यभिज्ञा (यह ज्ञान कि परमेश्वर और जीवात्मा एक है); और वास्तव में, परम-शिव के तंत्र का सार भी यही है ॥ ४९ ॥

यिहय मात्रु रूप पय दिये,
यिहय बार्यया रूप करि विशेश ।
यिहय माया रूप अंति जुव हैये,
शिव छुय कूठ तु ब्रेन वौपदेश ॥ ५० ॥

भार्यारूपेण या नारी, तर्पयेन्नरवासनाम् ।
मातृरूपेण सा नारी, वार्तसल्यं वितनोति हि ।
विपरीता तु माया सा, प्राणानपहरिष्यति ।
शिवस्य दर्शनं न स्यादुपदेशं विचारय ॥ ५० ॥

(नारी की महिमा के सम्बन्ध में लल कहती है :—) मातृ-रूप में
यह पय (दूध) पिलाती है, भार्या-रूप में विषय-वासना की तुप्ति करती
है और अन्ततः माया रूप में प्राण हरण कर लेती है। शिव-प्राप्ति
कठिन है, (रे मनुष्य !) इस उपदेश को तू सावधान होकर समझ
ले ॥ ५० ॥

युस यि करुम करि प्यतरुन पानस,
अरजुन बरजुन बैयिस क्युत ।
अंति लागि रोस्त पुशिरुन स्वात्मस,
अदु यूर्य गँडि तु तूर्य छुस ह्यौत ॥ ५१ ॥

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं लभते फलम् ।
नान्यस्तु फलभागी स्यात् स्वात्मैव फलभुग्भवेत् ।
फलकामो न कुर्यान्निःस्पृहः कार्यमाचरेत् ।
अपर्यित्वात्मने सर्वं कल्याणं लभते परम् ॥ ५१ ॥

जो जैसा कर्म करेगा उसका वैसा फल उसे भुगतना पड़ेगा । दूसरे
उसमें भागीदार नहीं हो सकते । मनुष्य को चाहिए कि वह निःस्पृह
होकर कर्मफल को स्वात्म (परमात्मा) के ऊपर छोड़ दे । फिर जहाँ
कहाँ भी जाएगा वहाँ उसका हित होगा ॥ ५१ ॥

है गौरा परमेश्वरा,
बावाम ब्रेय छुय अन्तर व्योद ।
दौशवय वौपदान कंदुपुरा,
हह क्व तुरुन तु हा हा कवु तोत ॥ ५२ ॥

गुरो ममैतमुपदेशमेकं
कुरुष्व बोधाप्तिकरं दयातः ।
हाः - हः इमौ स्तः सममास्यजाता-
वुष्णोऽस्ति हाः किमथ हः सुशीतः ॥ ५२ ॥

हे मेरे गुरु-परमेश्वर ! आप अन्तर्यामी (सर्वज्ञ) हैं, अतः मुझे जरा
यह समझाइए कि श्वास-प्रश्वास दोनों भीतर से उद्भूत होते हैं, मगर फिर
भी हा ! हा ! गर्म क्यों और हू ! हू ! शीतल क्यों ? ॥ ५२ ॥

सौय शिल पीठस तु पटस,
सौय शिल छ्य प्रथिवोन देश ।
सौय शिल शुबुवुनिस ग्रटस,
शिव छुय कूठ तु ब्रेन वौपदेश ॥ ५३ ॥

यथा शिलैकैव स्वजातिभेदात्
पीठादिनानाविधरूपभागिनी ।
तथैव योऽनन्ततया विभाति
कष्टेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ५३ ॥

जो शिला पीठ (चौकी) में लगी है, वही सङ्क पर भी है । जो
शिला पृथ्वी-तल पर है वही शिला चक्की में भी शोभायमान है । (मूल-
तत्व एक है पर स्वरूप भिन्न-भिन्न दिखते हैं) इसी प्रकार शिवत्व का ज्ञान
भी कठिन है, (रे मनुष्य !) इस उपदेश को तू सावधानी पूर्वक
समझ ले ॥ ५३ ॥

रव मतु थलि थलि ताप्यतन,
ताप्यतन वौतम देश ।
वरुन मतु लूकु गरु अंत्यतन,
शिव छुय कूठ तु चेन वौपदेश ॥ ५४ ॥

स्थले स्थले स्वैः किरण्यथा रविः

पतत्पर्यभेदेन गृहेषु वाऽभियम् ।

जलं तथा सर्वजगद्गृहेषु

कष्टेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ५४ ॥*

क्या यह संभव है कि रवि यह-यह को अर्थात् प्रत्येक स्थल को तापित (प्रकाशित) न कर केवल कुछ उत्तम (गिने-चुने) देशों (स्थलों) को ही तापित (प्रकाशित) करे। इसी प्रकार क्या यह संभव है कि वरुण (जल देव) प्रत्येक घर में प्रवेश किये बिना रह सकें। (अर्थात् जिस प्रकार सूर्य और वरुण बिना भेदभाव के सभी प्राणियों के लिए हितकारी हैं उसी प्रकार शिव भी सब का है, सब के लिए है।) बस, उसको समझना ज़रा कठिन है, यह उपदेश (बात) ऐ मनुष्य। तू जान ले ॥ ५४ ॥

राजस बाज्य यैम्य करतल त्यज्य,
स्वरगस बाज्य छुय तफ ताय दान ।
संहजस बाज्य यैम्य गौरु कथ पाज्य,
पापु पौन्य बाज्य छुय पनुय पान ॥ ५५ ॥

यः खड्ग-हस्तः स लभेत राज्यं
करोति पुण्यं लभते स नाकम् ।

गुरुपदेशो शिवदर्शनं स्यात् ॥ ५५ ॥

नरो हि हेतुनिज-पाप-पुण्ययोः ॥ ५५ ॥

जिसने तलवार उठाई वह राज्य का भागीदार बना। जिसने तप और दान किया वह स्वर्ग का भागीदार बना। जिसने गुरुपदेश को आत्मसात् कर लिया वह सहज (परमात्म-दर्शन) का भागीदार बना। (दरअसल, इस संसार में) पाप-पुण्य के कारणों का भागीदार मनुष्य स्वयं है ॥ ५५ ॥

राजु हमुस आसिथ सपदुख कौलुय,
कुसताम ज्ञौलुय क्याहताम ह्यथ ।
ग्रटु गव बंद तय ग्रटन ह्यैत गौलुय,
ग्रटु वोल ज्ञौलुय फल फौल ह्यथ ॥ ५६ ॥

भूत्वादि त्वं राजसरालरूपः
कथं स्वतः सम्प्रति सूकतां गतः ।

कः सारमादाय गतस्त्वदीयं
यस्मान्निरुद्धं तव प्राणचक्रम् ॥ ५६ ॥

(अंतकाल आने पर) राजहंस के समान होने पर भी (ऐ मनुष्य !) तुम गूंगे हो गये। जाने कौन तेरे भीतर से क्या लेकर भाग गया ! तेरी (जीवन रूपी) चक्की रुक्कर बंद हो गई और चक्कीवाला (अशादि के सदृश) चैतन्य रूपी फल लेकर भाग गया ॥ ५६ ॥

लल बो द्रायस कपसि पोशिचि संचुय,
काड्य तु दून्य करनम यंचुय लथ ।
तुयि येलि खारिनम जाविजि तुये,
वोवुर्य वानु गंयम अलांजुय लथ ॥ ५७ ॥

कापसि-पुण्य-कलिका-तुलनां दधाना
ललाहमत्र जगति प्रमुदा प्रफुल्ला ।
हा हन्त ! तत्र निष्पीडन-चक्र-पिण्डा ।
पश्चाच्च चर्मतन्वी-ध्वननेन ध्वस्ता ॥ ५७ क ॥

कणशो जर्जरा जाता पीड़ा-पीडित-दुर्भगा ।

~१~ कुविन्दस्य गृहं प्राप्ता तन्ववाये विलम्बिता ॥ ५७ ख ॥

मैं लल उसी उमंग और चाव के साथ इस संसार में खिली थी जिस उमंग और चाव के साथ कपास के ढण्ठल से फूल खिलता है। परन्तु बेलने की रगड़ और पिजयारे (धुनिये) की धुनकी ने मेरी खूब गत बनाई और बारीक बनाते-बनाते मेरा कण-कण उखाड़ डाला। फिर जुलाहे के यहाँ पहुँचकर (करघे पर) मैं लटक गई ॥ ५७ ॥

लाचारि बिचारि प्रवाद कौरुम,
नदोर छुवु तु हैयिव मा ।
फीरिथ दुबारु जान क्याह वौनुम,
प्रान तु रहुन हैयिव मा ॥ ५८ ॥

असूचयं करुणस्वरेण जीवान्
क्रेयं वृथा नश्वर-विश्व-पण्यम् ।
चेत्कीणने प्रीणनमात्मनस्ते
क्रेयाणि भो ! मानव-मानसानि ॥ ५८ ॥

लाचार और बेचारा होकर मैंने आर्त पुकार की कि यह संसार
अस्थिर है, इसे खरीदने की कोशिश मत करना । (अर्थात् इसमें मत
फैसना) । साथ ही यह भी पुकारा कि खरीदना है तो प्राणियों के
प्राणों (दिलों) को खरीद लो ! ॥ ५८ ॥

वाख मानस कौल अकौल ना अते,
छोपि मुदरि अति ना प्रवेश ।
रोज्जान शिव शेखुथ ना अते ॥
मौतियय कुंह तु सुय वौपदेश ॥ ५९ ॥

वाइमानसं च तन्मुद्रे शिवशक्ती कुलाकुले ।
यत्र सर्वमिदं लीनमुपदेशं परं तु तत् ॥ ५९ ॥

(रे मनुष्य !) वह (परमशक्ति) वाणी, मन तथा कुलीनता-
अकुलीनता की सीमाओं से परे है । मौन-मुद्राओं का भी वहाँ प्रवेश
नहीं है । शिव और शक्ति भी वहाँ रहते नहीं हैं । (इन सबके अतिरिक्त)
तुम्हारे पास जो शेष बचा है, वही परमोपदेश है ॥ ५९ ॥

शिव शिव कारान हमसु गथ सोरिथ,
छजिथ व्यवहार्य द्यन क्योह राथ ।
लागि रोस्त अदुय युस मन करिथ,
तस्य गथ प्रसन सुरु गोरु नाथ ॥ ६० ॥

शिवं जपन्ते हृदि हंसगत्या
दिवानिशं ये परियापयन्ति ।

कुर्वन्त आसक्ति-विहीन-स्वान्तं 248

तेषु प्रसन्नः सुरनाथ-शङ्करः ॥ ६० ॥

शिव-शिव करते (जपते) तथा हंस गति (सोऽहम्) का ध्यान करते
हुए जो दिन-रात व्यवहारी (गृहस्थ, संसारी) बना रहे और जो अपने मन
को लाग रहित व द्वैत-शून्य बनाये, उसी पर सुरगुरुनाथ (परम शिव)
नित्य प्रसन्न रहते हैं ॥ ६० ॥

शिव वा कीशव वा जिन वा,
कमलजूनाथ नाम दीरिन यियुह ।
मे अबलि कास्यतन बवुरज ॥

सु वा, सुवा, सुवा, सु ॥ ६१ ॥

शिवो वा केशवो वापि जिनो वा द्रुहिणोऽपि वा ।

संसाररोगेणाक्रान्तामबलां मां चिकित्सतु ॥ ६१ ॥

(चाहे वे) शिव कहलाएँ, केशव कहलाएँ या जिन (तीर्थकर)
कहलाएँ । या फिर कमलजनाथ (ब्रह्मा) नाम धारण कर लें । चाहे
वे कुछ भी कहलाएँ, मुझ अबला को भवरुज (सांसारिक दुःखों) से मुक्ति
दिला दें ॥ ६१ ॥

सिद्ध मालि सिदो सेद कथन कन थव,
चै दोंह पथ कालि सोरन क्याह ।
बालको तौह्य क्यथो द्यन राथ बैरिव,
काल आव कुठान तु कैरिव क्याह ॥ ६२ ॥

गुरुवर्य ! धैर्यविधुरा विरहे त्वदीये
राँविदिवं कथमतो परियापयेम ।
कालस्य वीक्षण-क्षणे करवाम किवा
बाला वयं किमपि बोधय बोधरूप ॥ ६२ ॥

✓ १०५: हे सिद्धमौल गुरुजी ! मेरी सीधी-सी बात पर कान धरना । आपके बाद हम बालक अपने दिन-रात कैसे गुजारेंगे ? काल हमारी कठिन परीक्षा लेगा और भला तब हम क्या करेंगे ? ॥ ६२ ॥

ह्यथ कैरिथ राज फेरिना,
दिथ कैरिथ त्रपती ना मन ।
लूब व्यना जीव मरिना,
जीवंत मरि ताय सुय छुय ग्यान ॥ ६३ ॥

लब्धवापि राज्यं नहि तुष्टमन्तस् ॥ २५० ॥
त्यक्तवापि राज्यं नहि शान्तिमेति ।
लोभं विना नैव मृतिर्जनस्य
लोभं जहीतीह विवेकवृत्तिः ॥ ६३ ॥

✓ (यह कैसी विडंबना है कि) राज्य (ऐश्वर्य के साधन) पाकर व उसका उपयोग करने पर भी मन तृप्त नहीं होता और राज्य त्यागने पर भी मन को संतुष्ट नहीं होती । (दरअसल, लोभ ऐसी चीज है कि) विना लोभ के जीव मरता नहीं है (लोभ उसके साथ लगा रहता है) जीते जी मनुष्य मर जाए, वह इच्छा-लोभ को मार दे, यही ज्ञान की बात है ॥ ६३ ॥

हा मनशि ! क्याजि छुख वुठान सैकि लूर;
अभि रठि हामालि पकी नु नाव ।
ल्यूखुय यि नारान्य करमुनि रुखि,
ति मालि हेकी नु फिरिथ काँह ॥ ६४ ॥

त्वं कथं सिकता-रज्जु-निमाणे निरतो नर !
नातस्ते जीघनस्येषं नौका पारं गमिष्यति ।
ललाटे कर्मरेखां यासदान्नारायणः स्वयम् ॥ २८ ॥
न सा साधनशून्यस्य लोपं यास्यति दुर्जया ॥ ६४ ॥

रे मनुष्य ! तू क्यों रेत की रस्सी बनाता (बट्टा) है ? इससे, रेखले मानस ! तेरी जीवन-नैया पार नहीं लग सकती । नारायण ने तेरी जो कर्म (भाग्य)-रेखा खींची है, वह कभी किर (बदल) नहीं सकती ॥ ६४ ॥

अंदरी आयस ब्रांदरुय गारान,
गारान आयस हिह्यन हिह्य ।
ब्रुय हय नारान, ब्रुय हय नारान,
ब्रुय हय नारान, यिम कम विह्य ॥ ६५ ॥

चन्द्रमन्वेषमाणाऽहमन्तस्तो बहिरागता,
बहिरन्तर्न भेदोऽस्ति, त्वं नारायण ! दृश्यसे ।
सर्वत्र दर्शनं विष्णोः, सर्वगस्त्वं निरीक्ष्यसे,
नारायण ! विचित्रेयं लीलादेवी विराजते ॥ ६५ ॥

(ध्यान-योग में स्थित होकर) मैं अन्दर से (सब को प्रकाशित करनेवाले) चन्द्र को ढूढ़ते-ढूढ़ते बाहर आ गई । (अर्थात् अंतर्जंगत् से बहिरंजित् में आ गई) । (इस प्रक्रिया में) मैंने भीतर-बाहर दोनों को एकजैसा पाया । दरअसल, हे नारायण ! तू ही सर्वत्र दिखा है मुझे । हे नारायण ! तू ही सर्वत्र दिखता है मुझको ! हे नारायण ! तेरी यह अंदर्भुत लीला कैसी विचित्र है ! ॥ ६५ ॥

अकुय ओमकार यस नाबि दरे,
कुम्बुय ब्रह्मांडस सुम गरे।
अख सुय मंथुर च्यतस करे,
तस सास मंथुर क्याह करे ॥ ६६ ॥

आ ब्रह्माण्डं नाभितो येत नित्य-
मौंकाराख्यो मन्त्र एको धूतोऽयम् ।

कृत्वा चित्तं तद्विमर्शेकसारं
किं तस्यान्यैर्मन्त्रवृन्दैविद्येयम् ॥ ६६ ॥*

जो मात्र ऊँकार को नाभिस्थान में (ध्यानपूर्वक) धारण कर ले तथा
कुम्भक (प्राणायाम की एक अवस्था) से उसे ब्रह्माण्ड तक पहुँचा दे और
केवल इसी एक मन्त्र (यानी ऊँके जाप) को याद कर ले, उसे अन्य सहस्र
मन्त्रों (को याद करने) की क्षमा आवश्यकता है ? ॥ ६६ ॥

अछ्यन आय तु गछुन गछे,
पकुन गछे द्वन क्यो राथ ।
योरय आय तु तूर्य गछुन गछे,
कैह नतु कैह नतु कैह नतु क्याह ॥ ६७ ॥

जराऽगता क्षीणतरोऽद्य देहो
ज्ञातोऽवसायो गमनाय कार्य ।

समागताः स्मो यत एव तव
गन्तव्यमेवह दृढं न किञ्चित् ॥ ६७ ॥*

(अनादि काल से) अविच्छिन्न गति से हम (इस संसार में) आते
रहे और (यहाँ से) जाते रहे। (आवागमन का) यह चक्र दिन-रात
चलता रहा है और चलता ही रहेगा। (रे मनुष्य !) तू अब यह प्रयत्न
कर कि जहाँ से तू आया है, वहाँ चला जा। (वहाँ से मुड़कर न आ)।
(आवागमन के इस चक्र से) तुझे कुछ-न-कुछ सीख ले लेनी चाहिए ॥ ६७ ॥

शिव गुर ताय कीशव पलुनस,
ब्रह्मा पायद्यन वौलुस्यस ।
यूगी यूगु कलि परज्ञान्यस,
कुस दीव अशवु वारु प्यठ चड्यस ॥ ६८ ॥

शिवोऽश्वः केशवस्तस्य पर्याणमात्मभूस्तथा ।
पादयन्त्रं तव्र योग्यः सादो क इति मे वद ॥ ६८ ॥*

शिव घोड़ा है और केशव काठी तथा ब्रह्मा पायदान की शोभा
बढ़ा रहा है। केवल योगी योग-बल से पहचान सकता है कि कोन-सा
देव इस अश्व पर चढ़कर सवारी कर सकता है ! ॥ ६८ ॥

अनाहथ ख सौरुक शुन्यालय,
यस नाव नु वरुन नु गुथुर तु रुक ।
अहम विमरशि नादु विन्दुय यस वौन,
सुय दीव अशवु वारु प्यठ चड्यस ॥ ६९ ॥

अनाहतः खस्वरूपः शून्यस्थो विगतामयः ।
अनामरूपवर्णोऽजो नादविन्द्रात्मकोऽस्ति सः ॥ ६९ ॥*

अनाहत-ओहम् जिसकी छवि है, शून्य जिसका स्वरूप है (अर्थात्
शून्यालय जिसका वास है), जिसका न नाम, न वर्ण, न गोत्र और न रूप
है। आत्म-विमर्श से जिसे नाद-विन्दु आदि का ज्ञान है, वही देवता
(योगशक्ति वाला शहस्रवार) निर्गुण रूपी घोड़े पर चढ़कर सवारी कर
(आवागमन के इस चक्र से) सकता है ॥ ६९ ॥

अव्यास्य सविकास्य लयि वौथू,
गगनस सगुन म्यूल समि अटा ।
शून्य गोल अनामय मौतू,
योहय वौपदीश छुय बटा ॥ ७० ॥

अभ्यासेन लयं नीते दृश्ये शून्यत्वमागते ।

साक्षिरूपं शिष्यते तच्छान्ते शून्येऽव्यनामयम् ॥ ७० ॥

अभ्यास अर्थात् योगाभ्यास द्वारा जब विस्तार-विकास का लयीकरण हो जाता है यानी बहिंगत् और अन्तर्जंगत् एक हो जाते हैं, तब सगुण (ब्रह्माण्ड) और गगन (शून्य, निर्गुण) एक विख्ने लग जाते हैं तथा शून्य भी नाम-शेष हो जाता है। बचा रहता है मात्र अनामय (रोग, शोक, उपाधि विहीन) शिव तत्त्व। हे पंडित! यही एक उपदेश है ॥ ७० ॥

आमि पनु सोदरस नावि छंस लमान,
कति बोजि दय म्योन मे ति दियि तार ।
आम्यन टाक्यन पोन्य जन शमान,
जुव छुम ब्रमान गरु गछुहा ॥ ७१ ॥

निस्सार-सुक्रेण विकर्षयन्ती, नावं स्वकीयां भवसागरादहम् ।
परं न जाने हि निभालयेत् कदा, पारं परं प्रापयति हृदीश्वरः ।
नो चेद् वृथा मे श्रम एव, नीरं यथाऽविपक्वंहिंशरावपाने ।
तथापि गन्तुं प्रिय-सद्य सत्वरा सुविह्वला तत्र कदानु प्राप्नुयाम् ॥ ७१ ॥

कच्चे धारे से मैं अपनी नैया को भवसागर से खींचकर ले जा रही हूँ। जाने कब मेरे देव (ईश्वर) मेरी सुनेंगे और मुझे पार लगाएंगे। (मेरा यह परिश्रम वृथा जा रहा है) वैसे ही जैसे कच्चे मिट्टी के सकोरों सत्कर्मों का पानी पिला। इस प्रकार तेरे पूर्व कर्मों का भार उस पशु में पानी टिकता नहीं है बल्कि सोख जाता है। मगर, इतना सब होते की, बलि की तरह चुक जाएगा जो साग-पात खाकर देवी की भ्रंट चढ़ हुए भी मेरा जी मचल रहा है कि अपने घर (परमधाम) को जला है। अन्यथा खा-खाकर एक दिन वाटिका में कुछ भी शेष न चली जाऊँ ॥ ७१ ॥

ओमकार येलि लयि औनुम,
वुह्य कौशम पनुत पान ।
शेवोत त्राविथ सथ मारुग रोटुम,
तेलि लल बो वाच्चुस प्रकाशस्थान ॥ ७२ ॥

ओङ्कारमात्ससात्कर्तुं कायं प्रेसाग्निनाऽदहम् ।

अतीत्य योगषष्मागर्ति, सप्तमं मार्गमास्थिता ।

ललाहं तदा प्राप्ता, प्रकाश-स्थानमुत्सम् ॥

दुर्लभं लब्धस्माभिः कथञ्चित्तशाश्वतं पदम् ॥ ७२ ॥

ओङ्कार को अपने में लय करने के लिए मुझे अपनी काया को (प्रेसाग्नि में) तपाना पड़ा। (योग के) छः मार्ग पार कर सातवाँ मार्ग (सहस्रार) पकड़ा और तब कहीं जाकर मैं 'लल' प्रकाश-स्थान तक पहुँच सकी ॥ ७२ ॥

ग्यानु मारुग छय हाकुवार,
दिज्यस शमु दमु क्रैयि पान्य ।
लामा चंकरु पौश क्रैयि दार,
छयनु खयनु मौत्री वारुय छेन्य ॥ ७३ ॥

बोधस्य वाटिकां सिङ्च, शम-सत्कर्मवारिणा ।

पूर्वांजित कर्मभारोऽयं नश्येद् बलिपशुर्यथा ।

अन्यथा नाशयेदस्या, वाटिकाया मनोज्ञताम् ।

स एव पशुरागत्य शीघ्रं कार्या विचारणा ॥ ७३ ॥

ज्ञान-मार्ग एक शाक-वाटिका है, (रे मनुष्य ! तू) इसे शम-दम और सत्कर्मों का पानी पिला। इस प्रकार तेरे पूर्व कर्मों का भार उस पशु में पानी टिकता नहीं है बल्कि सोख जाता है। अब इस वाटिका में कुछ भी शेष न रहेगा ॥ ७३ ॥

ब्रह्मन ब्रैंटिथ दितिथ पन्थ पानस,
त्युथ क्याह वव्योथ तु फलिही सोव।
मूडस वौपदेश गंयि रींज्य दुमटस,
कन्थ दांदस गोर आपरिथ रोव ॥ ७४ ॥

चर्मणा कृतवान् रोधं, शरीरं शडकु-कीलितम् ।
न लब्धं फल-माधुर्यं बीजस्य वपनं विना ।
यथा प्रासादशिखरे स्वल्पलोष्ठस्य क्षेषणम् ।
यथा वृषाय गुडवानं, तथा ते बोधनं वृथा ॥ ७४ ॥

✓ अपने चर्म को काटकर तूने (रे मनुष्य !) अपने चारों ओर शरीर में खंटे गाइ दिए (कठोर साधना से अपने को कट पहुँचाया) पर तूने अपने भीतर ऐसा कोई बीज नहीं बोया जिससे तुझे कुछ फल मिलता । अब तुझे समझाना वैसे ही निरर्थक है जैसे गुंबज पर कंकर फेंकना या बैल को गुड खिलाना ॥ ७४ ॥

असी आस्य तु असी आसव,
असी दोर कर्य पतु वत ।
शिवस सोरि नु ज्योति तु मरुन,
रवस सोरि नु अत गत ॥ ७५ ॥

पूर्वमास्म भविष्यामः पश्चादपि वयं सका ।
अनादिकालाच्चंक्रमणं चर्यते न समाप्यते ।
शिवरूपस्य जीवस्य जननं मरणं तथा ।
तथा सूर्यस्य गमनं गगने न गमिष्यति ॥ ७५ ॥

✓ पहले भी हम ही थे और आगे भी हम ही होंगे । हमने ही अनादि काल से दौरे किये (चक्कर काटे) । शिव का जीना-मरना कभी समाप्त न होगा और न ही सूर्य का आना-जाना समाप्त होगा ॥ ७५ ॥

ज्ञिदा नंदस ग्यानु प्रकाशस,
यिमव ज्यून तिम जीवंत्य मौखुत ।
विशेषमिस समसारनिस पाश्यस,
अबोद्य गंडाह शेत्य - शेत्य दित्य ॥ ७६ ॥

चिदानन्दो ज्ञानरूपः प्रकाशाख्यो निरामयः ।
यैर्लब्धो देहवन्तोऽपि मुक्तास्तेऽन्येऽन्यथा स्थिताः ॥ ७६ ॥

जिनको चिदानंद और ज्ञान के प्रकाश की अनुभूति हो गई वे जी कर भी मुक्त हैं । (किन्तु जिनको यह अनुभूति नहीं हुई) वे अबोध (मूर्ख) संसार के विषमपाश में सौ-सौ गाँठों के समान उलझते जाते हैं ॥ ७६ ॥

छांडान लूछुस पन्थ पानस,
छेपिथ ग्यानस बोतुम ना कूँछ ।
लय करमसं तु वाच्चुस अलथानस,
बर्य बर्य बानु तु च्यवान नु कूँह ॥ ७७ ॥

स्वात्मान्वेषणयत्नमात्रनिरता श्रान्ता ततोऽहं स्थिता
तज्ज्ञानैकमहापदेऽतिविज्ञे प्राणादिरोधात्ततः ।
लब्धवानन्दसुरागृहं च तदनु दृष्ट्वात्र भाण्डान्यलं
पूर्णन्येव तथापि तत्र विमुखः प्राप्तो जनः शोचितः ॥ ७७ ॥

उसे ढूँढते-ढूँढते मेरा तन-मन थक गया पर उस परम-ज्ञान को प्राप्त न कर सकी । जब मैं अपने 'स्व' में लय हो गई तब 'अलथान' अर्थात् ज्ञानरूपी मधुशाला में पहुँच गई जहाँ (मधु से) बर्तन भरे पड़े हैं पर पीता कोई नहीं है ॥ ७७ ॥

जल अमुवुन हुतुवा तुरुनावुन,
ऊरगव मन पयरिव चरिथ ।
काठु देनि दोद श्रमावुन,
अनति सकोल कपटु चरिथ ॥ ७८ ॥

नौरस्तम्भो वह्निशैत्यं तथैव
पावैस्तद्वद्वयोमयानमर्शक्यं । ॥०
दोहो धेनोः काष्ठमय्यास्तथैव
सर्वं चैतज्जूम्भितं कैतदस्य ॥ ७८ ॥*

बहते हुए जल को थामना, अग्नि को बुझाना, वैरो द्वारा ऊर्ध्वेशमन (भूमि से ऊपर उठकर आकाश-मार्ग की ओर वायु में चलना), काठ की धैनु से दूध निकालना—ये सभी अन्ततः कपट-चरित हैं। (योग से चमत्कार दिखलाने वालों पर व्यंग्य) ॥ ७८ ॥

जानुहा नाडिल मन रंटिथ,
ब्रंटिथ, वंटिथ, कुटिथ, कलेश ।
जानुहा अदु अस्तु रसायन गंटिथ,
शिव छुय कूठ तु चेन वौपदीश ॥ ७९ ॥

अज्ञास्यं वशीकरुं यदि नाडौ-दलं तदा,
नश्येत् क्लेशः समर्था स्यां निर्मातुं रसायनम् । ॥०
दुष्करा शङ्कर प्राप्तिरिति मे निश्चिता मतिः,
इदानीमिम्मुपदेशं, सावधानंतयाशृणु ॥ ७९ ॥

यदि मैं नाड़ि-दल को वश में करना जानती, यदि यह जानती कि उसे कैसे काटूं और समेटूं, तो मेरा क्लेश मिट जाता और मुझे रसायन घोटने (आत्म-ज्ञान) का अनुभव हो जाता। शिव को प्राप्त किछिन है, (रे मनुष्य ! तू) यह उपदेश सावधानी पूर्वक सुन ले ॥ ७९ ॥

जननि ज्ञायाय रुत्य ताय कंती,
करिथ वौदरस बहू कलेश ।
फीरिथ द्वार बज्जनि वात्य तंती,
शिव छुय कूठ तय चेन वौपदेश ॥ ८० ॥

प्रसूदरं क्लेशयुतं विधाय
जातो मलाक्तोऽप्यनुयाति सन्ततम् । ॥५
यत्प्रेस्तिः सौख्यधिया नरः त्वियं
कष्टेन लभ्यं शृणु तं गुरोः शिवम् ॥ ८० ॥*

जननी से तू भला-चंगा जन्मा यद्यपि (तूने) उसके उदर (गर्भ) को बहुत क्लेश पहुंचाया। (वयस्क होने पर), तू किर उसी द्वार की प्रतीक्षा करने लगा (कैसी विडंबना है !) शिव को पाना किछिन है, (रे मनुष्य ! तू) यह उपदेश सावधानी पूर्वक सुन ले ॥ ८० ॥

तंथुर गलि ताय मंथुर मौजे,
मंथुर गोल ताय मौतुय च्यथ ।
च्यथ गोल ताय कैह ति ना कुने,
शून्यस शून्या मीलिथ गव ॥ ८१ ॥

तन्त्रं सर्वं लीयते मन्त्रं एव,
मन्त्रश्चित्ते लीयते नादमूलः । ॥२६
चित्ते लीने लीयते सर्वमेव
दृश्यं द्रष्टा शिष्यते चित्स्वरूपः ॥ ८१ ॥*

तंत्र (शास्त्र सम्मत तत्त्वांकन) निष्क्रिय सिद्ध हुआ तो मन्त्र (जप-तप योगादि) सामने आया। मन्त्र भी गला (निष्क्रिय सिद्ध हुआ) द्वारा प्राप्त चित्त (चिन्मय तत्त्व) शेष रहा। चित्त भी जब सिद्ध गया तो कहीं कुछ भी न रहा—शून्य के साथ शून्य मिल गया ॥ ८१ ॥

दमादम कौरमस दमन हाले,
प्रजाल्योम दीक तु ननेयम जाथ ।
अंदर्युम प्रकाश न्यबर छोटुम,
गटि रोटुम तु करमस थफ ॥ ८२ ॥

ततः

प्रज्वाल्य
स्फुटं दृष्टो मया तत्र
चित्स्वरूपो निरामयः ॥ ८२ ॥*

V. Jyoti.

(कुंभक द्वारा) मैं प्रतिपल दम (प्राण वायु) का निरोध करते ।
रही । इस (अम्यास) से मेरे अन्तर में ज्ञान रूपी दीप प्रज्वलि
हुआ और मुझे अपनी असली जात (स्थिति) का पता चल गया (साध ले), वैसे ही जैसे लुहार फूकता है । ऐसा करने से लोहे में
तब अन्तर्प्रकाश को बाहर फैला दिया और उस (प्रकाश में प्राप्त (तुक्षे) सोना हासिल होगा । अभी समय है, तू अपने इष्ट (यार) को
सत्य) को मैंने दृढ़ता से थाम लिया ॥ ८२ ॥

द्वादशांतु मंडल यस दीवस यजि,
नासिकु पवनुदार्य अनाहतु रव ।
सौयम कलपन अनेति च्रजि,
पानय सु दीव तु अरच्छुन कस ॥ ८३ ॥

यो द्वादशान्ते स्वयमेव कल्पिते
सदोदिते देवगृहे स्वयं स्थितः ।
संप्रेरयन् प्राणर्विं स शंकरो
यस्यात्मभूतः स कर्मचयेद् बुधः ॥ ८३ ॥*

V. Jyoti.

जिसने द्वादशमण्डल (ब्रह्मरंघ) को देवस्थान मान लिया हो ।
जिसने नासिक्य-पवन (प्राणायाम) से अनाहत स्वरूप को अनुभूत का
लिया हो, जिसके मन की सारी कृत्याएँ (सांसारिक इच्छाएँ) हो जाना । इन प्राणों के रहस्य को जानकर विद्यपूर्वक उनका निरोध
करने पर दूसरे मनुष्य भी क्यों न सोऽहम् रूपी स्वाद (आनंद) को
प्राप्त करें ? ॥ ८४ ॥

दमन बसति दितो दम,
तिथय यिथु दमन खार ।
शेसतुरस सौन गङ्गी हासिल,
वुनि छय सुल तु छांडुन यार ॥ ८४ ॥

लौहकारेण तुल्यस्त्वं
धम प्राणान् स्वभस्त्रया ।
लोहे स्वर्णोपलाबिधस्यात्
समयेऽभीष्टं विवेचय ॥ ८४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अपनी धौंकनी (फुंकनी) में हवा भर ले (योग
तब अन्तर्प्रकाश को बाहर फैला दिया और उस (प्रकाश में प्राप्त (तुक्षे) सोना हासिल होगा । अभी समय है, तू अपने इष्ट (यार) को
रुङ्ग ले ॥ ८४ ॥

प्रान तु रुहन कुनुय जोनुम,
प्रान बंजिथ लवि नु साद ।
प्रान बंजिथ कोंह ति नो खोजे ।
तवय लौबुम सूहम् साद ॥ ८५ ॥

प्राणापानसमानादी-
नैक्ये सम्यगवेदिष्म् ।
तान्निरुद्ध्यापरोनापि
सोऽहं-स्वाद

मवाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

पवन पूरिथ युस अनि वगि,
तस बौ ना सुपरशि न बौछि तु व्रेश।
ति यस करुन अंति तगि,
समसारस सुय ज्येयि नैछ ॥ ८६ ॥

यः पूरकेण चित्तं स्वं
रोधयेत्कुत्तुङ्गादिकम् ।
त पीडयति संसारे
सफलं चास्य जीवितम् ॥ ८६ ॥*

V. V. V. सफलं चास्य जीवितम् ॥ ८६ ॥*

जो पवन को पूरक (भीतर-वाहर खींचकर अर्थात् प्राणायाम) द्वारा नियंत्रित करे, उसको न भूख स्पर्श कर सकती है और नहीं, उन्हीं छः (उपाधियों) से मैं भी युक्त हूँ। बस, आपमें और मुझ प्यास। जो अंत तक यह विधि अपनाये संसार में उसी का जीना मैं यदि कोई भेद है तो वह यह है कि आप छः के स्वामी हैं और मेरे छः से, लूट गए हैं। [यहाँ पर छः उपाधियों से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और भ्रष्टाचार अथवा पंचेन्द्रियों व मन से है] ॥ ८६ ॥

यि क्याह आसिथ यि कुस रंग गोम,
संग गोम ब्रंटिथ हुद्दुदने दिगे।
सारेम्य पदन कुनुय वखुन प्योम,
ललि मैं लाग गोम लगु कमि शाठ्य ॥ ८७ ॥

कीदृगासीत् शरीरं मे, साम्प्रतं कीदृशं गतम् ।
प्रस्तरप्राय-हृदयं, कृन्तं हुद-हुद-पक्षिणा ।
तदा सम्पूर्णशास्त्रस्य, सार-सूत्रं समागतम् ।
तैलान्तराले निर्भिन्नो, वहन्माऽमृतनिर्झरः ॥ ८७ ॥

(स्वात्म-बोध में) मेरे शरीर के रंग का हाल क्या से क्या हो गया ! (आत्म-चित्तनृष्टी) हुद-हुद (पक्षी-विशेष) की ठूंगों ने संग (पत्थर) जैसे मेरे हृदय को काट डाला । सभी पदों (वेद-शास्त्रादि) का सार इहों से कठ तक प्राण-वायु ऊपर आती है । ब्रह्मांड (शीर्षस्थल) में एक ही सूत्र में सामने आ गया और मुझ लल के भीतर अमृत का सोता (प्राणापान रूपी) नदी प्रवाहमग्न है, इसीलिए हह ठंडा और हा-हा फूट पड़ा । अब सोच रही हूँ कि उसमें कहीं बह न जाऊँ ॥ ८७ ॥

यिमय शे चै तिमय शे मे,
श्यामु गला चै व्यन तांटुस ।
योहोय व्यन अंबीद चै तु मे,
जु श्यन सामी बो शेयि मुशुस ॥ ८८ ॥

यदेव षट्कं ते देव
तदेव च मम प्रभो ।
नियोक्ता त्वं नियोज्याहं
तस्यास्तीत्यावयोर्भिदा ॥ ८८ ॥*

—

नाविस्थानु छय प्रकरथ जलुवनी,
हिंडिस ताम येती प्रान वतुगौत ।
ब्रह्मांडस प्यठु छय नंद्य वहवनी,
हह तवु तुरुन तु हाहा तवु तौत ॥ ८९ ॥

नाभ्युत्थितो हा: जठराग्नितप्तो
ह: द्वादशान्ताच्छिशिरात्समुत्थः ।

हा: प्राणभूतोऽस्त्थथ हूः अपानः
सिद्धान्त एवं मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ९० ॥

नाभिस्थान की प्रकृति में (जठराग्नि) जलती रहती है और जैसे मेरे हृदय को काट डाला । सभी पदों (वेद-शास्त्रादि) का सार इहों से कठ तक प्राण-वायु ऊपर आती है । ब्रह्मांड (शीर्षस्थल) में एक ही सूत्र में सामने आ गया और मुझ लल के भीतर अमृत का सोता (प्राणापान रूपी) नदी प्रवाहमग्न है, इसीलिए हह ठंडा और हा-हा फूट पड़ा । अब सोच रही हूँ कि उसमें कहीं बह न जाऊँ ॥ ८९ ॥

शे वन च्रैटिथ शैशि कल बुजुम,
प्रकरथ हौन्जुम पवुनु सूती ।
लोलुकि नारु वाँलिज बुजुम,
शंकर लौबुम तमी सूती ॥ ९० ॥

कामादिकं काननषट्कमेत-
चिछ्ट्वामृतं बोधमयं मयाप्तम् ।

प्राणादिरोधात् प्रकृतिं च भक्त्या

V. V. ये मनश्च दग्ध्वा शिवधाम लब्धम् ॥ ६० ॥*

छः वन (शक्ति के छः चक्र) लांघकर मैंने शशिकला को जगाया (अर्थात् सांसारिक बंधनों को जब मैंने योगादि किया ओं से वश में कर लिया तब उस चन्द्रकला तक पहुँची जो परम-शिव का स्थान है) इसके लिए मुझे पवन (प्राणाधाम) द्वारा अपनी प्रकृति को सुखाना पड़ा और प्रेमादिन (देवानुरांग) से अपने कलेजे को भूनना पड़ा। तब कहीं जाकर मैं अपने शंकर को पा सकी ॥ ९० ॥

शील तु मान छुय पोन्य क्रेंजे,
मौछि यैम्य रौट मंल्य योद वाव ।
होस युस मसवालु गंडे,
ती यस तगि ताय सु अदु निहाल ॥ ९१ ॥

शीलस्य मानस्य च रक्षणं भट्टे-
स्तेरेय शक्यं निपुणं विधातुम् ।

वायुं करेणाथ गजं च तन्तुना

V. V. ये शक्यते स्तम्भयितुं सुधीरैः ॥ ६१ ॥*

(रे मनुष्य ! सत्य-अन्वेषण के समक्ष) शील और मान का विचोरण टोकरी में जल भरने के समान (व्यर्थ) है। हाँ, जो वायु को मुट्ठी से कर सके तथा हाथी को एक बाल से बाध सके—जिसे यह करना आये, वह अवश्य निहाल (आत्मज्ञान से समृद्ध) हो जाएगा ॥ ९१ ॥

समसरस बौदि आयस तपसुय,
प्रकाश लौबुम संहजु ।
मंरूयम नु कुंह मरु नु काँसि,
मरु नैछ तु लसु नैछ ॥ ९२ ॥

आसाद्य संसारमहं वराकी
प्राप्ता विशुद्धं सहजं प्रबोधम् ।
चिर्ये न कस्यापि न कोऽपि मे वा

V. V. ये मृतामृते माँ प्रति तुल्यरूपे ॥ ६२ ॥*

संसार में मैं तप करने को आई और बुद्धि-प्रकाश से सहज (स्वात्म-बोध) को पा लिया। (देशकाल, माया-मोह आदि के बंधनों से मैं मुक्त हो चुकी) न मेरा कोई मरेगा और न मैं ही किसी के लिए मरुंगी। (स्थिति ऐसी हो गई है कि) मरुं तो वाह ! जीवित रहूँ तो वाह ! (स्वात्म-बोध जीवन और मृत्यु की सीमाओं से परे है) ॥ ९२ ॥

संज्ञसस नु सातस पंज्ञसस नु रुमस,
सौमस मै ललि पननुय वाख ।
अंदरयुम गटुकार रंथि तु वौलुम,
च्रैटिथ तु द्युतमस तती चाख ॥ ९३ ॥

बालाग्रं सूचिकाग्रं वा
नाहं पश्चाद्वर्तिनी ।
अन्तस्तमो गृहीतं तन् ।
मया दीर्ण क्षणान्तरे ॥ ६३ ॥

सूई के नोक व बाल जितना भी मैं कभी (परमात्म-प्राप्ति के लिए) पीछे न रही। मैंने अपने अन्दर के अंधकार को पकड़ लिया और पकड़कर उसे चाक कर डाला। (अर्थात् तन्मय होकर मैंने अपने भीतर अज्ञान रूपी अंधकार को समाप्त कर डाला) ॥ ९३ ॥

सहजस शम तु दम नो गँड़े,
येंछि नो प्रावख मुख्ती द्वार।
सलिलस लवन जन मीलिथ गँड़े,
तोति छुय दौरलब सहजु व्यज्ञार ॥ ९४ ॥

स्वभावलव्धौ न शमोऽस्ति कारणं
तथा दमः किं परं विवेकः ।
नीरैकरूपं लवणं यथा भवेत् ॥ २६६
तथैकताप्तावपि नैष लभ्यः ॥ ६४ ॥*

सहज (आत्मबोध) शम और दम से प्राप्त नहीं होता और न ही मात्र इच्छा से मुक्ति-द्वार को पाया जा सकता है। सलिल में लवण धुल भी जाए तो भी सहज-विचार दुर्लभ है। (अर्थात् जीव और परमात्मा के तादात्म्य से तब तक कोई लाभ नहीं है जब तक कि सदैशक्तिमान परम ब्रह्म का जीव पर अनुग्रह न हो) ॥ ९४ ॥

अथ मवा लावुन खरवा,
लूकु हुंज कौंगुवार खेयी।
तति कुस बा दारी थर बा,
येति ननिस करतल वेयी ॥ ९५ ॥

गर्दभोऽयं वशीकार्यः;
खादेत् केसर-वाटिकाम् ।
त्वयि दण्डस्वरूपेण,
करवालः पतिस्यति ॥ ६५ ॥

(रे मनुष्य !) अपने हाथ से इस (मन रूपी) गधे को न जाने दे। (इसे वश में रख) यह (मूर्ख) लोगों की केसरवाटिका खाजा जाएगा और फिर तुझे दण्डस्वरूप तलवार की मार सहनी पड़ेगी ॥ ६५ ॥

गाफिलो हुकु कदम तुल,
वुनि छय सुल छांडुन यार ।
पर कर पादा परवाज तुल,
वुनि छय सुल तु छांडुन यार ॥ ९६ ॥

त्वरस्व चरण-न्यासे
शेषः कालोऽयमल्पकः ॥ १८ ॥

मार्गयस्व सखायं स्व-
मुहुनि कुरु पक्षिवत् ॥ ६६ ॥

रे गाफिल ! तू तेज कदमों से चल । अभी भी समय है, अपने यार को ढूँढ । तू पैंख पैदा कर और परवाज कर । अभी भी समय है, अपने यार को ढूँढ ॥ ९६ ॥

गाव गंड्यन्यम बोल पंड्यन्यम,
दैप्यन्यम ती यस यि रुचे ।
सहजु कुसमव पूज कर्यन्यम,
बो अमुलान्य तु कस क्याह मूचे ॥ ९७ ॥

निन्दन्तु वा मामथ वा स्तुवन्तु
कुर्वन्तु वाची विविधैः सुपुष्पैः ।
न हर्षमायाम्यथ वा विषादं
विशुद्धबोधामृतपानस्वस्था ॥ ६७ ॥

चाहे कोई मुझे गाली दे या बुरा-भला कहे । जिसे जो रखे, मुझे कहे । चाहे तो कोई मेरी सहज कुसुमों से पूजा करे । मगर इस सब का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि मैं अमर्लिन हूँ ॥ ६७ ॥

त्रयथ नौवुय चंद्रुमु नौवुय,
जलुमय ड्यूठुम नवम नौवुय।
यनु प्यठु ललि मै तन मन नौवुय,
तनु लल बो नवम नौवुय छस ॥ ९६ ॥

शरीरमन्तः परिमार्जितं यदा,
लल्लापि नव्या नवमेवसर्वम् ।
अन्तर्गतां जलमयीं प्रकृतिं च चित्तं,
चन्द्रं च चारुकिरणं गगने व्यपश्यम् ॥ ९८ ॥

चित्त नया और चन्द्रमा भी नया । भीतर की जलमय प्रकृति को भी नित्य नया ही देखा । जब से 'लल' ने तन-मन को माँज तब से लल भी नयी की नयी ॥ ९८ ॥

त्रयथ अमरपथि थेव्यजि,
ति त्रोवुथ लगिय जुड्य ।
तति चु नो शीक्यजि सन्दार्यजि,
दौदु शुर्य तु कौछि नो मुड्य ॥ ९९ ॥

योजय मनोऽमरपथे कुपथं न गच्छेत्
शीघ्रं विधेहि स्ववदो न विभेहि किञ्चित्
मातुर्जहातिन हठी शिशुरङ्गमेत्य ।
तद्वन्मनो भवति निप्रह-ग्रन्थ-हीनम् ॥ १०० ॥

(रे मनुष्य ! तू) अपने चित्त को अमर-पथ पर लगा दे । यदि उसे खुला छोड़ देगा तो फिर पुनः (अमर पथ से) जुड़ेगा नहीं । उसको वश में करने से तू जरा भी संकोच न कर क्योंकि वह एक (हठी) शिशु है जो (द्वाध पीने पर भी माँ की) गोद से उतरने का नाम नहीं लेगा ॥ ९९ ॥

मनस सूत्य मनुय गौङ्डुम,
त्रयतस रटुम त्रोपार्य वग ।
प्रकुञ्ज सूतिय पौरुष वौलुम,
सर मै कौहम लंबुम वथ ॥ १०० ॥

मनोहि बद्वं मनसा सहैव
कविका गृहीता चल-चित्त-वाजिनः ।
आवेष्ट्य सम्यक् पुरुषं प्रकृत्या
विचारणाया लब्धः सुमार्गः ॥ १०० ॥

मैने मन को मन के साथ बांध लिया और चित्त की लगाम चारों ओर से पकड़ ली । पुरुष को प्रकृति से आवेष्टित कर लिया तब मुझे चित्तन का मार्ग प्राप्त हुआ ॥ १०० ॥

बलु त्रयता वौदस वयि मोवर,
चोन त्रिथ करान पानु अनाद ।
त्रै को जनुन्य ख्योद हरि कर,
कीवल तसुंदुय तारुक नाद ॥ १०१ ॥

रे चित्त ! चिन्तां न विधेहि स्वस्मिन्
चिन्तां त्वदीयां कुरुते महेश्वरः ।
ज्ञानं न ते शं स कदा विधास्यति
त्वं केवलं नाम गृहाण तस्य ॥ १०१ ॥

रे चंचल चित्त ! तू हृदय में भय को न भर (ला) । तेरी चिंता तो स्वयं अनादि कर रहे हैं । तुझे क्या मालूम कि कव वे तेरी क्षुधा (इच्छा) पूरी करेंगे । तू तो केवल उसके नाद (नाम) का जाप करता जा ॥ १०१ ॥

त्रयतु तौरुग गगनु ब्रमुवोन,
नंसीशि अकि छुँडि यूजनु लछ।
त्रेतनि वगि बौदि रटिथ जोन,
प्राण अपान संदारिथ पखुच॥ १०२॥

चित्ताभिधः सर्वगतिस्तुरज्जः
क्षणान्तरे योजनलक्षगामी।
धार्यो बुधेन्द्रेण विवेकवलगा-
नोदेन वायुहृष्यपक्षरोधात्॥ १०२॥*

चित्त-रूपी तुरंग गगन में भ्रमण करने का आदी है (जेंची-जेंची कल्पनाएँ व इच्छाएँ करता है) तथा एक निमिष में लाखों योजन पटक-पटक कर धोया। इसको बुद्धि और चेतनता (विवेक) रूपी लगाम से और तब कहीं जाकर मैं परमगति पा सकी ॥ १०२॥

त्रयतु तौरुग वगि ह्यथ रौटुम,
ज्ञेलिथ मिलुविथ दशि नाडि वाव।
तदय शशिकल व्यगुलिथ वंछुम,
शुन्य शुन्याह मीलिथ गव॥ १०३॥

नियन्त्रितः खलीनेन मया चित्त-तुरज्जमः।
बद्धो नाडिकायुक्त श्वास-प्रश्वास-रज्जुभिः।
तदा शशिकला सम्यक्जाता पीयूषवर्षिणी।
एवं शून्येऽमिलच्छून्यमभेदो जीव-ब्रह्मणोः॥ १०३॥

मैंने चित्तरूपी तुरंग को लगाम देकर याम लिया। फिर दशनाडियों के श्वास-प्रश्वास के साथ उसको बांध दिया। तब कहीं शशिकला पिघली और शून्य में शून्य मिल गया ॥ १०३॥

दोब्य यैलि छावनस दोब्य कनि प्यठुय,
सज तु साबन मंछनम यंचुय।
सुच्य यैलि फिरनम हनि हनि काचुय,
अदु ललि मै प्रावुम परमु गथ॥ १०४॥

पूर्व फेनिल-मेलनेनरजको मां प्रस्तरेऽपोथयत्।
यद्यच्चात् सौचिक-कर्तव्य-कृतसिसा गावेष्वहं समभवम्।
एवं साधनशोधिता तनुरभूद् योग्या प्रियस्यार्पणे।
धन्याऽहं निजजीवने दुर्लभां प्राप्तातु परमां गतिम्॥ १०४॥

(पहले) खूब साबुन और सोडा मलकर धोबी ने मुझे पत्थर पर कल्पनाएँ व इच्छाएँ करता है) तब दर्जी ने मेरे अंग-अंग में केंची फिराई धूम आता है। जिसने बुद्धि और चेतनता (विवेक) रूपी लगाम से और तब कहीं जाकर मैं परमगति पा सकी ॥ १०४॥

पौत जूनि वंथिथ मौत बोलुनोवुम,
दग ललुनावुम दयि सुंजि प्रहे।
लल्य लल्य करान लालु वुजुनोवुम,
मीलिथ तस मन श्रोच्योम दहे॥ १०५॥

प्रातः प्रबुद्धा हि व्यवोधयं स्वं
परमार्थ-मार्गं चलमन्तरज्जम्।
ततः प्रियं श्रावित-लल्लनाम्ना
प्राबोधयं धन्यतमा हि जाता॥ १०५॥

(नित्य) रात्रि के अंतिम पहर में जागकर मैंने इस चंचल मन को बहुत समझा-बुझाकर परमार्थ की ओर प्रवृत्त किया। इस प्रक्रिया में मुझे अपार पीड़ियां सहनी पड़ी। 'मैं लल हूँ', 'मैं लल हूँ' कहकर मैंने अपने लाल (प्रिय इष्ट) को जगाया और फिर उससे मिलकर मेरी यह देह पवित्र हो गई ॥ १०५॥

मनसाय मन बवसरस,
छाँूर कूप नेरेस नारुक छुख ।
लेका लेख योद तुल कौटि,
तुलि तूलु तु तुल ना केह ॥ १०६ ॥

मन एव मनुष्याणां भवसागर उच्यते ।
वेला-विहीनादस्मात् दुर्वचोवडवानलः ॥ १०६ ॥
निर्गतो ज्वलन-ज्वालासंधात् मुद्वमिष्यति ।
तदा त्वं कृतयत्तोऽपि गणनाकरणेऽक्षमः ॥ १०६ ॥

(रे मनुष्य ! तेरा यह) मन एक भव-सागर है । यदि इसे खुला छोड़ देगा (बांधेगा नहीं) तो इसमें से गाली-गलोज (ईर्ष्या, द्वेष, वैर आदि) रूपी बड़वानल के फव्वारे छूटेंगे जिन्हें तू तोलना भी चाहे तो नहीं तोल सकता ॥ १०६ ॥

कामस सूतिय प्रय नो बेरुम;
कूदस द्युतुम पवनुन फेश ।
लूबस मूहस भरन चंटिम,
वशना भजिम गंयस खोश ॥ १०७ ॥

काम न कामये किञ्चित् क्रोधाग्निनिर्विष्टा ।
लोभस्य दुष्टमोहस्य चरणो शातितौ मया ॥ १०७ ॥ १
एतावति कृते यत्ने तृष्णा निर्गता मम ।
तदाऽहं सर्वभावेन जीवने मुदिताऽभवम् ॥ १०७ ॥ २

मैंने काम के साथ प्रीति नहीं रखी, क्रोध को पवन से बुझा दिया, लोभ और मोह के चरण काट डाले तब मेरी तृष्णा मिट गई और मैं खुश हो गई ॥ १०७ ॥

यैम्य लूब मनमथ मद भ्रूर मोहन,
वति नाश्य मारिथ ति लोगुन दास ।
तंसी संहजु ईश्वर गोहन,
तंसी सोहय व्योंदुन स्वास ॥ १०८ ॥

यो मारयित्वा मद-लोभ-कामान्
अभिमानशून्यः प्रभु-दास एव ।
प्राप्तिस्तदाऽभूत् सहजेश्वरस्य
भूतिभवेद् भस्म-समानमेव ॥ १०८ ॥

जिसने लोभ, मन्मथ (काम) और मद रूपी चोरों को मारकर उन्हें अपने रास्ते से हटा दिया तथा इतना-कुछ करने पर भी दास (निराभिमानी) बना रहा, उसने सहज-ईश्वर को पा लिया और फिर उसकी दृष्टि में सांसारिक सुख-वैभव राख समान हैं ॥ १०८ ॥

लंलिथ लंलिथ वदय बौ वाय,
ब्रैता मुहुच पैयी माय ।
रोजी नो पतु लोह लंगरुच छाय,
निजु स्वरूप क्याह मौठुय हाय ॥ १०९ ॥

रे चित्त ! इद्यां त्वयि वार-वारम्
बद्धं त्वमस्मिन् दृढ़-मोह-जाले ।
किञ्चिचन्न यास्यति त्वया सह लोकवस्तु
कि विस्मृतं निजस्वरूपमनूपरूपम् ॥ १०९ ॥

रे चित्त ! तुझपर फूट-फूट कर रोऊं । तू (सांसारिक) मोह-माया में (बुरी तरह) उलझ जो गया । (तू शायद यह नहीं जानता कि अंतकाल में) यह लोह-लंगर (भौतिक सुख-वैभव) की छाया तक तेरा साथ न देगी । हा ! तू निज स्वरूप को क्यों भुला बैठा ? ॥ १०९ ॥

लूब मारून संहजु व्यञ्जारून,
द्रोग जानुन कलपन ज्ञाव ।
निश छुय तु दूर मो गारून,
शून्यस शून्या मीलिथ गव ॥ ११० ॥

लोभं त्यक्त्वा वैमनस्यं च तद्वत्-
कार्यो नित्यं स्वस्वभावावसर्षः ।
शून्याच्छून्यं नैव भिन्नं यथैवं
तस्मात्त्वं तद्भेदबुद्धिर्थैव ॥ ११० ॥*

(रे मनुष्य !) तु लोभ को मार (त्याग) दे और सहज (स्वात्म) का विचार कर। (उस परम-ब्रह्म को प्राप्त करना कोश्चित्ता मिला तो वह धास का। राजमहल के (निर्माण) लिए बढ़ी चारों ओर सरल कार्य नहीं हैं) अपितु उसे एक महांगा सौदा जान। इसलिए मिला तो वह भी मूर्ख। मेरी स्थिति तो बीच बाजार में ताले रहित कल्पनाएँ करना छोड़ दे। वह तो तेरे निकट है, उसे अपने से दूर बाजार जैसी ही गई है। देह मेरी तीर्थ-विहीन ही रही। मेरी यह छंद ! वह शून्य के साथ मिल जाने के समान है ॥ ११० ॥

बुथि क्या जान छुख बौदु छुय कन्य,
असलुच कथ जाँह सनिय नो ।
परान लेखान वुठ औंगजि गंजिय,
अंद्रिम दुय जाँह चंजी नो ॥ १११ ॥

दर्शने दर्शनीयस्त्वं,
हृदयं पाषाण-सन्निभम् ॥ १११ ॥

यत्र सत्याङ्कुरो नैव,
शास्त्राधीतो विभेदवृक् ॥ १११ ॥

दिखने को तो तेरा चेहरा बड़ा सुन्दर है किन्तु हृदय-पद्धति के समान है, जिसमें सत्य की बात कभी समायी नहीं। पढ़तेन लिखते लेच की प्रतीति होती है ? तू दुर्बुद्धि के कारण परधर्मी बन गया है तेरे होंठ व उंगलियाँ धिस तो गई किन्तु तेरे अन्दर की दुय- (वैत्ति अपने धर्म से च्युत हो गया है) तभी तो आवागमन और जन्म-मरण भावना) दूर नहीं हुई ॥ १११ ॥

हचिवि हारिजि प्यञ्जिव कान गोम,
अबख छान प्योम यथ राजदाने ।
मंजबाग बाजरस कुलुक-रौस वान गोम,
तीरथ-रौस पान गोम कुस मालि जाने ॥ ११२ ॥

अहो काष्ठ-धनुस्तव्र, शरः शष्पविनिमितः ।
निर्मातुं राजप्रासादं, कारुरज्जः समागतः ।
यथा पण्यगृहं हट्टे यन्त्रकेण विनास्थितम् ॥ २७४
शरीरं मामकं तद्वद् जानीयात्को मम स्थितिम् ॥ ११२ ॥

(भाग्य ने मेरे साथ खिलवाड़ किया) काठ के धनुष के लिए सरल कार्य नहीं हैं। अपितु उसे एक महांगा सौदा जान। इसलिए मिला तो वह भी मूर्ख। मेरी स्थिति तो बीच बाजार में ताले रहित विवशता कौन जान सकता है ! ॥ ११२ ॥

हा च्यता कवु छुय लोगमुत परमस,
कवु गोय अपजिस पञ्चुक ब्रोत ।
नैश-बौज वश कोरनख पर-दरमस,
यिनु गछनु च्यनु मरनस क्रोत ॥ ११३ ॥

रे चित्त ! कस्मादसि मोहमग्नं
जानासि सत्यं त्वमसत्यमेव ॥ २८०
परधर्ममेत्य निजधर्म-विहीन ! मूढ !
तस्मात्पुनः पतति हा ! जन्मादि-चक्रे ॥ ११३ ॥

रे चित्त ! तू क्यों आसक्ति में पड़ा हुआ है ? क्यों क्षूठ में तुझे दिखने को तो तेरा चेहरा बड़ा सुन्दर है ? क्यों क्षूठ में तुझे समान है, जिसमें सत्य की बात कभी समायी नहीं। पढ़तेन लिखते लेच की प्रतीति होती है ? तू दुर्बुद्धि के कारण परधर्मी बन गया है तेरे होंठ व उंगलियाँ धिस तो गई किन्तु तेरे अन्दर की दुय- (वैत्ति अपने धर्म से च्युत हो गया है) तभी तो आवागमन और जन्म-मरण के चक्रकर में फंसा हुआ है ॥ ११३ ॥

चारों
सिन्ना
दुकाव
विवशता

तलु छुय ज्युस तय प्यठु छुख नच्चान,
वन तु मालि क्यथ पच्चान छुय।
सोरुय सौबरिथ येति छुय मौच्चान,
वन तु मालि अन क्यथु रोच्चान छुय ॥ १४ ॥

निमनस्थगतोपरि नृत्यकारिन्

कथं हि चित्तं रमतेऽव संगतम् ।

इहैव सर्वं परिहाय गच्छेः ॥

कथं पुनस्ते स्वशनं हि रोचते ॥ १४ ॥

तेरे नीचे खाई है और तू उसके ऊपर नाच रहा है। भला तेरे मन इस स्थिति से समझौता कैसे कर रहा है? सब कुछ इकट्ठा कर बाद में यहीं छोड़ देना है, (इस बात को जानते हुए भी) भला तु विधि मेरी समझ में न आयी। सुमरनी (माला) फेरते-फेरते मेरा अँगूठा और उंगलियाँ गल गई मगर मन की दुय (द्वैतभावना) फिर भी दूर न हुई ॥ १४ ॥

दिल किस बागस दूर कर गासिल,

अदु द्यवु फौलिय यं बुरजाल्य बाग ।

मरिथ मंगनय वुमरि हुंज्ज हासिल,

मोत छुय पतु पतु तहसीलदार ॥ १५ ॥

चित्तोद्यानाद् यथाशीघ्रः कत्तृणं कुरु दूरतः ।

तदा हेमलतायाश्च प्रसरेत् पुष्प-सौरभम् ।

यत्कृतं जीवने किञ्चित्, तत्कृते मरणान्तरे ।

प्रश्नो विधास्यते सम्यक्, पश्चात् मृत्युर्गमिष्यति ॥ १५ ॥

दिल के बाग से झाड़-झाड़ निकाल फेंक तब कहीं नरगिस के फूल उस बाग में खिलेंगे। मरने के बाद तुझसे, उम्र भर में तू ने जो हासिल किया है, उसका हिसाब मांगा जाएगा और मोत मारो तहसीलदार की तरह तेरा पीछा करेगी ॥ १५ ॥

परान परान ज्यव ताल फंजिम,
त्रै युग्य क्रय तंजिम न जाँह ।

सुमरन फिरान ध्योठ तु ओंगजि गज्यम,
मनुच्य दुय मालि त्रंजिम नु जाँह ॥ १६ ॥

अधीयाना चिराक्षाभूत, तव योग्या हि योग्यता ।

अभूच्च सर्वथा दुःखम्, जिह्वा-तालु-विशेषणम् ।

माला भावर्त मानाया, अङ्गुष्ठ-कर-वल्लरी ।

छिन्ना जाता परं नैव, गता द्वैताभिभावना ॥ १६ ॥

पढ़ते-पढ़ते मेरी जीभ और तालु फट गये मगर तेरे योग्य कर्तव्य-विधि मेरी समझ में न आयी। सुमरनी (माला) फेरते-फेरते मेरा अँगूठा और उंगलियाँ गल गई मगर मन की दुय (द्वैतभावना) फिर भी दूर न हुई ॥ १६ ॥

गोरस प्रुछाम सासि लटे,

यस नु केह वनान तस क्या नाव ।

प्रुछान प्रुछान थंचिस तु लूसुस,

केह नस निश क्या ताम द्राव ॥ १७ ॥

सहस्रो गुरुः पृष्ठः

कि नामाक्षात्वस्तुनः ।

मौनेनैवसमाजप्ता,

सर्वं वाचामगोचरम् ॥ १७ ॥

गुरु से मैंने हजार बार पूछा कि जिसे 'कुछ नहीं' कहते हैं, उसका नाम क्या है? पूछते-पूछते मैं यक गई और मुरझा गई। (अंत में) मैं यही समझी कि 'कुछ नहीं' से ही कुछ न कुछ निकला है ॥ १७ ॥

ब्रालुन छु वृजमलु तु वटय,
ब्रालुन छु मंदिन्यन गटुकार।
ब्रालुन छु पान पनुन कडुन ग्रटय,
ह्यत मालि संतूश वाती पानय ॥ ११८ ॥

विद्युत्प्रहार-प्रतिमा क्षमा मता
रवौ स्थिते नश्यति सा तमो यथा।

आत्मार्पणं पेषण-चक्रिकात्तरे
सा दुर्लभा प्राप्त्यति तुष्टि सेवनात् ॥ ११९ ॥

सहनशीलता विजली और गाज समान, (कठोर परीक्षा व श्रम के वस्तु) है, सहनशीलता मध्याह्न में अन्धकार के समान (असंभव से बात) है। सहनशीलता अपने आपको चक्की में वीसने के समान है (रे मनुष्य ! यदि तू) संतोष से काम ले तो वह (सहनशीलता) स्वयं मिल जाएगी ॥ १२० ॥

लतन हुंद माज लार्योम वतन,
अंकिय हावनम् अंकिचिय वथ।
यिम यिम बोजन तिम कोनु मतन;
ललि बूज शतन कुनिय कथ ॥ १२१ ॥

अन्वेषणे मे पदमांस-लिप्तो-
मार्गस्तथाऽहं न गता स्वलक्ष्यम्।

एकेन पन्थाः स व्यदर्शि, मोदते, २२३

यस्तस्य संज्ञां शृणुयात्कदाचित् ॥ १२२ ॥

शतशः सारश्नेषु,
सारमेकं मयाधृतम्।

लल्लाऽहं न पुनर्भास्ति,
गमिष्यामि जगत्पथे ॥ १२३ ॥

(धूमते-फिरते) मेरे तलवों का मांस सङ्कों से चिपक गया अर्थात् सत्यान्वेषण के लिए मुझे खूब कष्ट उठाने पड़े। (अंत में) एक (आत्मज्ञान) ने मुझे मार्ग-दर्शन कराया। जो उस (एक) का नाम सुनेंगे वे भला मतवाले क्यों न हो जाएँ। लल ने सौ बातों में से एक बात सार की निकाल ली ॥ १२४ ॥

द्योठ मौधुर तय म्यूठ जहर,
यस यूत छुनुख जतन बाव।
येन्य युथ कोरुय कल तु क़हर,
सु तथ शहर बाँतिथ प्यव ॥ १२० ॥

तिक्ष्टं मधुर-तुल्यं भो ! मधुरं गरलायते।

येनाऽस्त्वादितं कष्टं, मधुरं सुखमाप्यते।

कृतमाराधनं येन, निष्ठया बृद्धया भृशम् ॥ १२१ ॥

स एव सफलीभूतः स्वस्य लक्ष्यस्य प्रापणे ॥ १२० ॥

(कभी-कभी) कडवा मीठा और मीठा जहर (समान कडवा) होता है। (इसलिए रे मनुष्य !) जिसने जितना कष्ट सहा (कटुता को बचा) और एक निष्ठा से आराधना की, वह अपने उद्देश्य (मंत्रय) को प्राप्त करने में सफल हो गया ॥ १२१ ॥

तन मन गेयस बो तस कुनुय,
बूजुम सतंच गंटा वज्ञान।

तथ जायि दारनायि दारन रंटम्,
आकाश तु प्रकाश कोरुम सरु ॥ १२२ ॥

मनसा कर्मणा वाचा निमग्ना ध्येय-चिन्तने ॥ १२३ ॥

तदेव तस्य देवस्य ध्वनिः कर्णपथंगतः ॥ १२१ ॥ क
धारणा विधृता स्वान्ते सर्व-तत्व मवेदिषम्।

गगनातपातालपर्यन्तं स्थितस्य जगतस्तथा ॥ १२१ ॥

जब तन-मन से मैं उसके ध्यान में खो गई तो मुझे सत्य की घण्टी बजती सुनायी दी। तब मैंने अपनी धारणा (शक्ति) को धारण (आत्मसात्) कर लिया और आकाश व पाताल (सर्वस्व) का रहस्य जान गई ॥ १२१ ॥

कर्मीरी (नागरी लिपि)

करु छुख दिवान अनिने बछ,
तुख अय छुख तु अंदरिय अछ।
शिव छुय अंत्य तय कुन मो गछ,
सहज कथि म्यानि कर तो पछ ॥ १२२ ॥

त्वमन्धवद् आम्यसि लक्ष्यहीन-
स्तवान्तराले स्थित एव शंकरः ।
नान्यत्र लभ्य शिव-दर्शनं त्वया ।
विश्वासमातिष्ठ मदीयवाक्ये ॥ १२२ ॥

V. V. Singh.

(रे मनुष्य ! तू) क्यों अन्धे की तरह इधर-उधर टटोलता (हाथ मारता) है। यदि तू बुद्धिमान है तो अन्दर की ओर उन्मुख (ब्रेजारा) तृण-जल का आहार करता है। फिर यह उपदेश, रे पंडित ! कथन पर तू विश्वास कर ॥ १२२ ॥

मूँडो क्रय छय नु दारून तु पारून,
मूँडो क्रय छय नु रछिन्य काय ।
मूँडो क्रय छय नु दीह संदारून,
सहज व्यचारून छुय वौपदीश ॥ १२३ ॥

त्वदीय-कार्यं नहि काय-मार्जनम्
त्वदीय-कार्यं नहि काय-चिन्तना ।
त्वदीय-कार्यं नहि कायभूषणं । १२४
त्वदीय-कार्यं सहजस्य चिन्तनम् ॥ १२३ ॥

रे मूँड ! तेरा कतंव्य सजना-सेवना नहीं है। रे मूँड ! तेरा कतंव्य अपनी काया की चिता करना नहीं है। रे मूँड ! तेरा कतंव्य अपनी देह को संभालना भी नहीं है। तेरे लिए तो सहज को विचारना ही उपदेश है ॥ १२३ ॥

लज्ज कासी शीत न्यवारिय,
वन जल करान आहार ।
यि कम्य वौपदीश कोरुय बटा,
अच्चीतन वटस सच्चीतन द्युन आहार ॥ १२४ ॥

स्वचर्मणा रक्षति ते शरीरं
करोति नित्यं तृण-वारि-भोजनम् ।
परोपदेशिन् किमु हंसि चेतन-
नचेतनस्योपरि प्रस्तरस्य ॥ १२४ ॥

यह तेरी लज्जा को ढाँकता है (खाल, चमड़े आदि के रूप में), योगीत से भी तेरी रक्षा करता है (ऊन आदि के रूप में) स्वयं तो हो जा। शिव वहीं पर हैं, अतः कहीं और न जा। मेरे इस सहज तुम्हें किसने दिया कि अचेतन पत्थर पर तू इस चेतन नकरे को बलि चढ़ा ॥ १२४ ॥

द्विलिनिस औवरस जायुन जानुहा,
सुदरस जानुहा कंडिय अठ ।
मंदिश छगियस वैद्युत जानुहा,
मूडस जानिम नु प्रनिथ कथा ॥ १२५ ॥

छेत्स्याम्यहं दक्षिण-जात-मेघान्
करुं क्षमा सिन्धुजलस्य शोषणम् । १२५
विमोचनं शक्यमसाध्यरोगतः
न मूढमुद्बोधयितुं समर्था ॥ १२५ ॥

दक्षिणी मेघों को भंग (छिन्न-भिन्न) भी कर सकती हूँ, सागर से जल को भी उलीच सकती हूँ, असाध्य रोग की चिकित्सा भी कर सकती हूँ किन्तु मूढ़ को (तत्त्वार्थ) नहीं समझा सकती ॥ १२५ ॥

अव्यंचारी पोथ्यन छि हो मालि परान,
यिथु तोतु करान 'राम' पंजरस ।
गीता परान तु हीथा लवान,
पंरुम गीता तु परान छस ॥ १२६ ॥

पठन्ति प्रन्थान् शुकवन्नरा वृथा
तथैव गीताऽध्ययन-प्रदर्शनम् ।
ज्ञानाय गीतामहमध्यगोषि । १७

V. ५३३. तथाप्यधीये न प्रदर्शनाय ॥ १२६ ॥

अविचारी पोथियों (धर्मग्रन्थों) को वैसे ही पढ़ते हैं जैसे पिंजर में तोता 'राम-राम' रटता है । ऐसे लोगों के लिए गीता का पढ़ना मात्र एक बहाना (डोंग है) गीता मैंने पढ़ी और पढ़ रही हूँ । (धर्मग्रन्थों के कथनों को पढ़कर उन्हें आत्मसात् करना चाहा महत्वपूर्ण है) ॥ १२६ ॥

परन सौलब पालुन दौरलब,
सहज गारुन सिखिम तु कूठ ।
अव्यासकि गनिरय शासतुर मौठुम,
जीतन आनंद निश्चय गोम ॥ १२७ ॥

सुलभं हि पठनं नित्यं
दुर्लभं तस्य पालनम् । १८३

V. ५३४. शास्त्रं विस्मृत्य प्राप्यते ॥ १२७ ॥

पढ़ना सुलभ (आसान) है किन्तु उसका पालन करना दुर्लभ (कठिन) है । (इसी प्रकार) सहज (स्वात्म) को खोजना भी दुष्कर है । अभ्यास के धने कुहरे में जब मैं सारे शास्त्र भूल बैठो तब मुझे चेतन-आनंद की प्राप्ति हुई ॥ १२७ ॥

मंदछि हाँकल कर छ्यनेम,
यैलि ह्यडुन गेलुन असुन प्रावु ।

आस्क जामु कर सन दज्यम,
यैलि अंद्रयुम खार्युक रोज्यम वारु ॥ १२८ ॥

लज्जा विशुद्धला तव सम्यग् भवितुमहंति । १८३

अपशब्दान् यदा क्षन्तुं शक्तिरन्तर्जनिष्यते ॥ १२८ ॥ क
लज्जा-जवनिका लग्ना ज्वलिष्यति क्षणान्तरे ।

पूद्वाहि मन्मनो-वाजी ममायत्तो भविष्यति ॥ १२८ ॥ ख

लाज की साँकल तभी टूट सकेगी जब दूसरे के उलाहनों, हँसी-जाक और अपशब्दों को सहने की मुक्षमें क्षमता आ जाएगी । अभ्यासल, लाज का यह पर्दा तभी जलेगा जब मेरे अन्तर्मन का स्वच्छद डामेरे वश में रहेगा ॥ १२८ ॥

स्फुत तु क्रुत सोख्य पज्यम,
कनन नु बोजुन अँछ्यन नु बावु ।

ओरुक दपुन यैलि वौंदि वुज्यम,
रतन दीप प्रजल्यम वरज्जनि वावु ॥ १२९ ॥

कर्णद्वयं मे नश्यणोत्वभद्रं, नेत्र-द्वयं पश्यतु नो विरूपम् ।

सहै सदाऽहं प्रियमप्रियं वा, कदा भवेज्जीवन मीदृशं मे ॥ १२९ ॥ क
यदात्मनः कर्षणमुद् भविष्यति,
बाधाशतंयद् विलयं गमिष्यति

ममान्तरे निःस्व-प्रभञ्जनेऽपि,
रत्नप्रदीपो ज्वलितो भविष्यति ॥ १२९ ॥ ख

भला और बुरा मुझे समझाव से सहना है । कान मेरे न बुरा निं और आँखें मेरी न बुरा देखें । हृदय में मेरे जब उधर का आह्वान (स्वात्म का आह्वान) उद्बुद्ध होगा तब मेरे भीतर अंकिचनता के भंजन में भी रत्नदीप प्रज्वलित होगा ॥ १२९ ॥

त्यकु तु थाकु प्यठ शेरि ह्यञ्जम,
न्यंदा सपनिम पथ ब्रोंठ लान्य ।
लल छ्यस कल जाँह नो छ्यनिम,
अदु यैलि सपनिस व्यपिहे क्याह ॥ १३० ॥

तिरस्क्रिया थूत्कृतिरप्रसह्या,
मया शिरोधार्यकृता समन्तात्
न निन्दया लल्लजनस्य बाधा
पूर्णे हि कुम्भे न विशेत् किञ्चित् ॥ १३१ ॥

मैंने गली-गलौज और थूक-फटकार को शिरोधार्य कर लिया।
मेरी निंदा तो आगे-पीछे हुई है और होती रहेगी। मगर इससे मुझे
लल की एकाग्रता में कभी व्यवधान नहीं पड़ा क्योंकि मेरी उपलब्धियों
का घर तो पहले से ही भरा पड़ा है, उसमें और कुछ भला कैसे समा-
सकता है ? ॥ १३० ॥

कंदो ! करख कंदि कंदे,
कंदो ! करख कंदि विलास ।
बूगय मीठि दितिथ यथ कंदे,
अथ कंदि रोजि सूर न तु सास ॥ १३१ ॥

त्वं चेत् तनुं चिन्तयसि प्रमुग्धः ।
शरीर-सज्जां वित्तनेषि नित्यम् ॥

चिनोषि चेद् भोग-विलास-साधनं,
हा हङ्कः सर्वं सर्वम् भविष्यति ॥ १३१ ॥

हे मनुष्य ! यदि तू हमेशा अपने तन की चिंता करता रहेगा, तन
की ही साज-सज्जा में खोया रहेगा, तन के लिए भोग-विलास के साधन
जुटाता रहेगा, तो यह जान ले कि तेरी इस देह की कभी राख तक भी
न बची रहेगी ॥ १३१ ॥

सौमन गारुन मंज यथ कंदे,
यथ कंदि दपन सौङ्घप नाव ।
लूब मूह ब्रलिय शब यिथी कंदे,
पैथ्य कंदि लीज तथे सोर प्रकाश ॥ १३२ ॥

स्वस्मिन् गवेषय शिवंहि निजस्वरूपम्
कामादिदोषरहितं यदि मानसं ते ॥ १३२ ॥
शोभिष्यते तवतनुविमला हि भानो ॥ १३२ ॥
स्तेजस्विता विलसिता सर्वाङ्गमध्ये ॥ १३२ ॥

V. J. M.

(ऐ मनुष्य !) तू अपने तन में ही सुमन (सच्चे मन) से उसे खोज
किसका तू स्वरूप है । तेरे मन से जब लोभ-मोह मिट जायेंगे तो तेरा
यह तन सुशोभित होगा और तेज एवं सूर्य-प्रकाश से भास्वरित हो
जाएगा ॥ १३२ ॥

नकसुय म्योन छुय होस्तुय,
अभ्य हंसत्य मौंगनम गरि गरि बल ।
लछि मंज सास मंज अखा लौसुय,
न तु ह्यतिनम सारिय तल ॥ १३३ ॥

लुब्धं मनो मे गजराज-तुल्यं
परीक्षते तत् प्रतिवासरं साम् ।
मृदनाति सर्वास्तु सहस्र-मध्ये,
कश्चिच्चन्नरस्तस्य भयाद् विमुच्यते ॥ १३३ ॥

मेरा यह लोभी-मन हाथी समान है। यह हमेशा मेरे बल की
परीक्षा लेता रहा है। इसके प्रभाव से लाखों, हजारों में एकाध बचा
हो तो हो, नहीं तो इसने सबको रोध डाला है ॥ १३३ ॥

ख्यनु ख्यनु करान कुन नो वातख,
न ख्यनु गछख अहंकारी ।
सौमुय खे मालि सौमुय आसख,
समि ख्यनु मुञ्जरनय चरुन्यन तारी ॥ १३४ ॥

भोगैर्नकिञ्चित्परिलभ्यते नर !

भोगोपलब्धौ कुरुषेऽभिमानम्
समस्थितस्तर्पय करणजात,
मुन्मुक्तद्वारो हि जनिष्यसे मुदा ॥ १३४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) खा-खाकर (अत्यधिक सुख-वैभव का भोग करने पर) कहीं का नहीं रहेगा और न खाने पर (अपनी इच्छाओं का नितांत शमन करने पर) अहंकारी बन जाएगा (तुझे अंपनी उपलब्धि का दंभ हो जाएगा) इसलिए तू समरूप में (न ज्यादा न कम) अर्थात् बालित मात्रा में अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर, इसी सब विधि से तेरे बंद द्वारा खुल जाएँगे ॥ १३४ ॥

कुस मरि तय कसू मारन,
मरि कुस तय मारन कस ।
युस हर-हर व्राविथ गरु गरु करे,
अदु सु मरि तय मारन तस ॥ १३५ ॥

को नाम मृत्योर्वशगो भविष्यति

कः कस्य हन्ता भ्रममावमेव
हर-हरं यो विस्मृत्य ब्रूयाद्
गृहं-गृहं तस्य वधो भविष्यति ॥ १३५ ॥

कौन मरेगा और किसको मारा जायेगा ? मरेगा कौन और मारेंगे किसको ? जो हर-हर (भगवान) को भूलकर घर-घर करेगा, वही मरेगा और उसी को मारा जाएगा ॥ १३५ ॥

गोर शब्दस युस यछ पछ बरे,
यानु वगि रटि च्यतु तौरगस ।
येष्वरय शोमिथ आचंद करे,
अदु कुस मरि तय मारन कस ॥ १३६ ॥

ग्रस्यास्ति श्रद्धा गुरुप्रोक्त-शब्दे
ज्ञानस्य वलगा हय-चित्त-रोधे ।
वदो खजातं मुख् यस्य चित्ते,
न तस्य मृत्यु नं च तस्य मारकः ॥ १३६ ॥

जो गुरु-शब्द पर आस्था और श्रद्धा रखे, ज्ञानरूपी लगाम से अपने चित्तरूपी तुरंग को काढ़ में रखे, जो इन्द्रियों को वश में करके आनंद-भोग करे, वह भला कैसे मर सकता है और उसे भला कौन मार सकता है ? ॥ १३६ ॥

रंगस मंज छुय व्योन व्योन लबुन,
सोहय चालख ब्रख तय सोख ।
ब्रख रुश तु वार गालख,
अदु डेशख शिव सुंद मौख ॥ १३७ ॥

नामानि रूपाणि बहूनि सन्ति,
विश्वस्य मञ्चे जगदीश्वरस्य ।
द्वन्द्वं सहिष्ये न करिष्यसे घृणाम्,
तदाहि ते शंकर-दर्शनं भवेत् ॥ १३७ ॥

इस संसाररूपी रंगशाला में तुझे उस (ईश्वर) के विभिन्न नाम-रूप मिलेंगे । (इस वैभिन्न्य में उसे पा लेना ही बड़ी बात है) इसके लिए जब तू सुख-दुःख सह लेगा; घृणा, वैर, क्रीध आदि को मन से गला देगा तब तुझे शिवमुख के दर्शन होंगे ॥ १३७ ॥

लोलुकि नारु लसि लौलि ललनोवुम्,
मरनम् मौयस तु छधुस नु जरय,
रंग रेत्ति जातुसुय क्याहनु रंग गेस,
बो दपुन ओलुम क्याह सन करे ॥ १३८ ॥

प्रेमाग्निक्रोडे तमलालयं यदा,
तदा भृताऽहं भरणात्पूर्वम्
जन्मक्षणे मे नहि जाति-रूप
महंविलीनेति नवीन-रूपम् ॥ १३९ ॥

प्रेम की अग्निरूपी गोदी में मैंने उसे (परम-तत्त्व को) डुलाया जिससे मरने से पूर्व ही मर गई । जन्मते समय तो मेरा न कोई रंग था और न कोई जाति किन्तु अब मेरे कई रंग हो गये हैं । 'मैं' कहना छूट गया, यह सबसे बड़ा रंग है ॥ १३९ ॥

त्रेशि बौद्धि मो क्रेशन्नन्नुन,
यान्य छययि तान्य संदारून दिह ।
फठ चोन दारून तु पारून,
कर चोपकारून सौय छय क्रय ॥ १४० ॥

न पीडयाऽह्नं क्षुधया पिपासया,
निभालय त्वं परिक्षीण-देहम् ।
अलंकृतैर्बाह्यप्रदर्शनैरलं
परोपकारं कुरु मुख्य-कार्यम् ॥ १४१ ॥

(रे मनुष्य ! तू) प्यास व भूख के मारे अपनी देह को न तड़पा । जैसे ही यह बुझने लगे (यकने लगे) वैसे ही इसे संभाल ले । तेरे ब्रह्मपवास धारने और बाह्यांवर पालने पर धिक्कार है । परोपकार कर, वही तेरा (परम) कर्तव्य है ॥ १४१ ॥

जनुम प्राविथ वयबव नो छोंडुम,
लूबन बूगन बोरुम न प्रय ।
सोमुय आहार स्यठा जोनुम,
ज्ञोलुम दोख-वाव पोलुम दय ॥ १४० ॥

लब्धवा जर्नि परिहता बहुभोगतृष्णा
लोभेन भोगेन सम्म न मंती
मतं सम्या तत्त्वितभोजनं तदा,
प्राप्तः प्रभुर्दूरगतं च दैन्यम् ॥ १४० ॥

जन्म पाकर मैंने (कभी) वैभव (ऐश्वर्य-भोग) को नहीं ढूँढ़ा (कभी उसकी चाह नहीं की) । लोभ और भोग से प्रीति नहीं रखी । समाहार को ही पर्याप्त माना । ऐसा करने से मेरा दुःख-दैन्य दूर हुआ और दैव को अपना बना लिया ॥ १४० ॥

रावनु मंजय रोवुम,
राविथ अथि आयस बवसरे ।
असान गिदान सहजुय प्रोवुम,
दपुनुय कोरुम पानस सरे ॥ १४१ ॥

अहं चिलीन्ना स्वर्णस्तथापि
चिलीनभावस्य गताति चेतना
विस्मृत्य सर्वं सहजं समागता,
ज्ञातोऽवबोधस्य शुभ-प्रकारः ॥ १४१ ॥

मैं (स्वाहम् में इतना) खो गई कि यह भूल गई कि मैं खो गई हूँ तथा अवसागर में लीन हो गई । हंसते-खेलते मैंने सहज को प्राप्त कर लिया और इस प्रक्रिया को आत्मबोध का आधार बनाया ॥ १४१ ॥

लोलुकि वौखलु वालिज पिशिसु,
कौकलु ज़ंजिम तु छज्जुस रसु।
बुजुभ तु जाजिम प्पनस चुशिम,
कवु जानु तवु सूत्य मरु किनु लसु ॥ १४२ ॥

प्रेमोलूखले सम्यक्, मया पिष्ट श्वमानसम्,
गता दुर्वासना शीघ्रं, शान्तभावेन संस्थिता ।
अर्नो तद् हृदयं तप्त्वा, पश्चादास्वादितं मया,
जा जाने कर्मणाऽनेन, मरणं वा जीवनं मम ॥ १४२ ॥

प्रीति की ओखली में मैंने अपने हृदय को पीसा (कूटा) जिससे ऐरी
कुवासना मिट गई और मैं शान्तभाव से रहते लग गई। पश्चात्, मैंने
इस हृदय को भूना-पकाया और उसको चखा। अब मैं यह नहीं जानती
कि ऐसा करने से मैं मर जाऊँगी या जीवित रह जाऊँगी ॥ १४२ ॥

केंच्चन दितिथम गुलाल यंत्रुय,
केंच्चन जोनुय तु दिनस वार।
केंच्चन छुनिथम नात्य ब्रह्म हंत्रुय,
बगवानु चानि गंज नमस्कार ॥ १४३ ॥

ददासि कस्मैचित्सुन्दरात्मजान्
किञ्चिन्नन कस्मैचिद् यच्छसि त्वम्
हा, ब्रह्म-हत्या-सम-पुत्रिकाः कवचिन्
तमामि भगवंस्तव चिवलीलाम् ॥ १४३ ॥

कुछ को तुमने कई गुलेलाला दिए (अर्थात् पुत्र ही पुत्र दिए) और
कुछ को कुछ भी न देना उचित जाना। कुछ के गले ब्रह्म-हत्याएँ (पुत्रियाँ
ही पुत्रियाँ) मढ़ दीं। हे भगवान्! तेरी (अपरंपर) गति को नमस्कार
है ॥ १४३ ॥

केंच्चन द्युतथम ओरय आलव,
केंच्चन रचायि नालय व्यथ ।
केंच्चन अङ्गू लजि मसच्यथ तालव,
केंच्चन पपिथ गय हालव ख्यथ ॥ १४४ ॥

आहूतास्स्वयमेव केचिन्नराः—केचिद् वितस्तां रताः
केचित्ते भधुराभिधान-भद्विरा मापीय मत्तास्तथा
तेषां दृष्टिरवस्थिता तव गृह प्रान्तोन्मुखो केचन 69
शालभा-भक्षित-नष्ट साधनकृषेः प्राप्ता न ते धामकम् ॥ १४४ ॥

कुछ को (हे भगवान्!) तुमने स्वयं बुलाया (अर्थात् उन पर
जन्म से ही ईश-कृपा हुई), कुछ ने वितस्ता नदी को गले लगाया (खूब
संध्या-स्नान करने लगे) कुछ तुम्हारे नाम की हाला पीकर बौरा गये और
उनकी नज़रें छत की ओर एकटक जम गई और कुछ की पकी फसलें
टिडिडयाँ खा गई—तुम तक पहुँचते-पहुँचते भी रह गए ॥ १४४ ॥

केंच्चन रनि छय शिहिज बूनी,
केंच्चन रनि छय बर प्यठ हनी।
केंच्चन रनि छय अदल त बदल,
केंच्चन रनि छय जदल छाय ॥ १४५ ॥

छायायुक्त चिनारवृक्षकल्पाः काश्चिद् भवन्त्यङ्गनाः,
केषांचित्प्रमदा भ्रमन्ति भुवने कौलेयवृत्ति गताः ।
काश्चिच्छापल-चर्चिता नव-नवं पुरुषान्तरं कुर्वते,
काश्चिच्छाया-धर्म-कर्म-कुशलाः साहाय्य मातन्वते ॥ १४५ ॥

कुछ की रनियाँ (पत्नियाँ) छायादार चिनार के पेड़ समान होती हैं,
कुछ की पत्नियाँ द्वार पर पड़ीं कुत्तियाँ के समान होती हैं, कुछ की पत्नियाँ
अदल-बदल करने (कहा न मानने) बाली होती हैं और कुछ की पत्नियाँ
घूम-छाँह की तरह आवश्यकतानुसार सहायक सिद्ध होनेवाली होती
हैं ॥ १४५ ॥

ग्रटु छु फेरान जेरि जेरे,
ओह कुय जानि ग्रटुक छल ।
ग्रटु येलि फेरि तय जाव्युल नेरे,
गू वाति पानय ग्रटु बल ॥ १४६ ॥

शनैः शनैश्चञ्चति चूर्णचक्रिका, तव्यभेदविज्ञं वत मध्यकीलकम्
मन्दं चलेच्चक्रदलं यदा तदा, पिष्टं क्षरेत् सूक्ष्मतरं स्वचक्रतः
पतन्ति गोधूम कणाः स्वतस्ततो मध्ये शनैश्चक्रदलद्वये रहो । १४६
एकं समालम्ब्य सुसाधनाया मचिन्त्यकष्टं लभते परं पदम् ॥ १४६ ॥

चक्री का पाट धीरे-धीरे धूमता है किन्तु अक्ष (मानी-बूंटी) को छोड़
और कोई चक्री के धूमने के रहस्य को नहीं जानता । जब ऊपर का पाट
धूमता है तो बारीक आटा निकलता और गेहूँ अपने आप पाटों के करीब
आता जाता है । (अनवरत साधना और सहिष्णुता से परम उद्देश्य की
प्राप्ति संभव है) ॥ १४६ ॥

शिव छुय जाव्युल जाल वाहराविथ,
क्रंजन मंजु छुय तरिथ क्यथ ।
जिन्दु नय वुछहन अदु कति मरिथ,
पान मंजु पान कड़ व्यञ्जारिथ क्यथ ॥ १४७ ॥

विस्तीर्य जालं जगति स्थितशिश्वो
व्याप्तः सदा सर्वशरीर मध्यगः

मृत्यौ स्थिते द्रक्ष्यसि कि, विवेकतो
निभालय त्वं प्रभुमन्तराले ॥ १४७ ॥

शिव अपना बारीक जाल बिछाये सर्वत्र व्याप्त है । देखो तो कैसे
सबके शरीरों (अस्थि-पंजरों) में रच-पच गया है । यदि तू जीते जी
उसको न देख सका तो क्या मर कर उसे देखेगा ? विवेक और आत्म-
चित्तन से काम ले और उसे अपने भीतर खोज निकाल ॥ १४७ ॥

शिव छुय थलि थलि रोजान,
मो जान ह्योंद तय मुसलमान ।
त्रुख अय छुख तु पान परजान,
सौ छय साहिवंस सूत्य जान ॥ १४८ ॥

स्थले स्थले शङ्कर एव राजते,
हिन्दु-त्रुखेषु कथं विभेदः ?
प्रबुध्य स्वात्मान मवेहि सम्यक्
स परिचयस्ते हरिणा समं स्यात् ॥ १४८ ॥

शिव थल-थल पर (सर्वत्र) व्याप्त है । (अतः रे मनुष्य ! तू)
हिन्दु और मुसलमान में भेद न जान । यदि तू प्रबुद्ध है तो अपने आपको
पहचान, यही साहिव (भगवान्) से परिचय करने के बराबर है ॥ १४८ ॥

चुय दीवु गरतस् तु दरती सज्जख,
च्रेय दीवु दितिथ क्रंजन प्रान ।
चुय दीव ठनि रौस्तुय वज्जख,
कुरु जानि दीव चोन परमान ॥ १४९ ॥

देव ! त्वमेव जगतीतल-जीवनस्य
स्त्रष्टा त्वमेव तस्मिन् क्रुतपञ्चप्राणः
त्वं शब्दशून्यो दुर्बोध देव !
त्वमेव सर्वत्र ध्वनिविराजते ॥ १४९ ॥

है देव ! तुम ही इस जीवन और धरती (जगत्) के सृजक हो !
तुम ही ने है देव ! पंचभूतों में प्राण फूंके हैं । है देव ! यद्यपि तुम
ध्वनि-रहित हो किन्तु तुम्हारी ही ध्वनि हर जगह व्याप्त है । है देव !
तुम्हारा प्रमाण (गति-अवगति) भला कौन जान सका है ? ॥ १४९ ॥

दीशि आयस दश दीशि त्रलिथ,
त्रलिथ त्रौटुम शुन्य अदु वाव ।
शिवुय ड्यूठुम शायि शायि मीलिथ,
शे तु त्रै त्रोपिमस तु शिवुय द्राव ॥ १५० ॥

चड्कमणं दिक् चक्रेऽस्मिन् कृत्वा देशं स्वमागता,
दिवीर्यं अंशावातं च निर्जनं च नहावन्तम् ।
पञ्चेन्द्रियाणि मनसा वशीकृत्य गुणव्रयम्, ।३७
वद्वलोकयं शिवं व्याप्तं सर्वत्र जगतीतले ॥ १५० ॥

मैं दसों दिशाओं में धूम फिरकर अपने देश (अन्तर्जगत्) में लौट आई । इसके लिए मुझे जाने कितने शून्यों और तूफानों को भेदना पड़ा । जब छ. (पञ्चेन्द्रियों व मन) और तीन (त्रिगुणों) को वश में कर लिया तो पाता कि शिव जगह-जगह (सर्वत्र) व्याप्त है ॥ १५० ॥

शुन्यक मादान कौडुम पानस,
मे ललि रुज्जुम न ब्रौद नु होश ।
वेदो सपनिस पानय पानस,
अदु कमि हिलि फौल ललि पंपोश ॥ १५१ ॥

शुन्यं महामार्ग मपारयं यदा,
लल्ला तदाऽहं विस्मृत्य सर्वम् ।३८
लब्धवा स्वकीयानुभवं मदोया
स्थितिः स्थिता पङ्क विरुद्धकञ्जवत् ॥ १५१ ॥

जब मैंने शून्य के एक असीम मैदान (झेव) को पार किया तो मुझ लल को न बुद्धि रही और न होश । तब स्वात्म के भेद को पाकर मेरी स्थिति कीचड़ में उगे कमल जैसी हो गई ॥ १५१ ॥

मिथ्या असथ कपट त्रोवुम,
मनस कौरम सुय बौपदीश ।
जनस अंदर कीवल जोनुम,
अनस ख्यनस कुस छुम द्रीश ॥ १५२ ॥

असत्य-मिथ्याचरणादि हेयं,
सद्योपदिष्टं निजमानसं यदा । ।१।
जने-जने केवल मेव वृष्टं,
व्यर्थं तदाऽभूदुपवासकप्टम् ॥ १५२ ॥

मैंने मिथ्याचार, असत्य व कपट को त्यागने का अपने मन को उपदेश दिया तथा प्रयेक जन में उस 'केवल' को व्याप्त जाना । अतः फिर अन्त खाने से द्वेष क्यों रंखूं (व्रतोपवास क्यों करूं) । (व्रतोपवास से अधिक महत्वपूर्ण है मन को शुद्ध रखना) ॥ १५२ ॥

शिशरस वुथ कुस रटे,
कुस ब्रौके रटे वाव । ।२।
युस पांछ यंदिय त्रयलिथ त्रटे,
सुय रटे गटे रव ॥ १५३ ॥

शिशिरे बर्षतो मेघान्, कः पुमान् वारणे क्षमः
समीरवेंग कः कुर्यात्, स्वकीये मुहित्वन्धने
पञ्चेन्द्रियाणि संयन्तु, समर्थः स्यात् कश्चन,
अन्धकारे रवि बद्धुं, समर्थः स्यात्तदा नरः ॥ १५३ ॥

शिशिर में ब्रसनेवाले पानी को भला कौन रोक सका है? वायु को भला कौन मुट्ठी में बांध सका है? जो अपनी पाँच इन्द्रियों को वश में कर सका वह अन्धकार में भी रवि को पकड़ सका ॥ १५३ ॥

सिहनी हुंद शिकार पांज कवु जाने,
हाँठ कवु जाने पौतरय दोद।
शमुहुच्य कदुर लेश कति जाने,
मैछ्य कति जाने पोंपुरय गथ ॥ १५४ ॥

सिहीबधं कि कुर्याच्छशादनो
बन्ध्या न जानाति प्रसूतिपीडाम् । २६
नहि काचदीपस्य तुला ह्यलातके
न मक्षिकायां शलभस्य योग्यता ॥ १५४ ॥

सिहनी का शिकार करना भला बाज क्या जाने ? बाँझ भला
पुनर्पीडा क्या जाने ? शमा की कद्र भला मशाल क्या जाने और
शलभ की गति भला मक्खी क्या जाने ? ॥ १५४ ॥

लेराह लंजुम मंज मादानस,
अंद्य अंद्य करिमस तंकियि तु गाह।
सौ रोजि येत्य तंय बौ गछु पानस,
वोन्य गव वानस फालव दिथ ॥ १५५ ॥

अकारि गेहं शुभ-सज्जितं परं,
विचिन्तितं हा ! तदिहैव हास्यते । २७
अहं गमिष्यामि तथैव सर्वथा,
यथा वणिक् पण्यगृहं पिधास्यति ॥ १५५ ॥

बीच मैदान में मैने एक मकान बनाया । उसको चारों ओर से
अच्छी तरह सजाया-संवारा । (मगर, अफसोस !) वह मकान यहीं
रह जाएगा और मैं चली जाऊँगी मानो दुकानदार दुकान बंद करके चला
जाए ॥ १५५ ॥

सौयि कुल नो दोदु सूति संगिजे,
सरपिनि ठूलन दीजि तो फाह।
स्यकि शाठस फल नो वंविजे,
रावुरिजि नु कोम याज्यन तील ॥ १५६ ॥

सिङ्च नो कदापि त्वं, पयसा वृश्चकौषधिम्,
सर्पिण्या नाण्डमासेव, न वापं वालुका-सृतौ । २८
ब्रुसस्य शाक-निर्माणे न तैलं नाशयेत् सुधीः,
द्वुःखवृद्धिर्भवेद् येन, न कुर्यात् तद् विचारवान् ॥ १५६ ॥

विच्छू बूटी को-दूध से कभी सींचना नहीं, सर्पिणी के अंडों को कभी
सेना नहीं, बालू के सेतु पर कभी बीज बोना नहीं तथा भूसी के रोटले
(खताई) पर कभी तेल बबाद करना नहीं ॥ १५६ ॥

मूडस ग्रानुच कथ नो वंनिजे,
खरस गोर दिनु रावी दौह ।
युस युथ करे सु त्युथ सौरे,
क्रेरे करिजि नु पनुन पान ॥ १५७ ॥

मूढाय नोपदेष्टव्यं, गर्वभाय गुडार्पणम्,
यथाकुर्म तथा भोगस्तवात्मानं न पातयेत् ॥ १५७ ॥

मूढ को जान की बात कभी कहना नहीं, गधे को कभी गुड खिलाना
नहीं । जो जैसा करेगा सो वैसा भरेगा, तू व्यर्थ अपने को कुएं में ढकेलना
नहीं ॥ १५७ ॥

आरस नेरि नु मोदुर शीरय,
निरवीरस नेरि न शुरा नाव ।
पूरखस प्रनुन छुय हस्यतिस कशुन,
यसो मालि दांदस व्यहा ज्ञाव ॥ १५८ ॥

मधूरसो रक्तफलान्न लभ्यते,
न कातरः शूर पदेन शस्यते,
न मूर्खबोधः प्रगुणाय कल्पते,
वीर्येण हीनो वृषभो निरर्थकः ॥ १५९ ॥

आलूबुखारे से कभी मीठा रस निकलेगा नहीं, निर्वीर्य का नाम कभी शूर कहलाएगा नहीं, मूर्ख को समझाना हाथी को खुजलाने के समान (व्यर्थ) है वैसे ही जैसे आलसी बैले से काम लेना कठिन है ॥ १५९ ॥

बबरि लंगस मुशुक नो मरे,
हूनि बस्ति कोकुर नेरि नु जाँह ।
मनु योद ग्वारुहन केरिय जेरे,
न तु शालुटुंगे नेरिय क्याह ॥ १६० ॥

लताथां बबरिख्यातायां सुगन्धो राजते सदा,
सारभेये न लभ्येत, कर्पूरामोदमधुरी ।
ध्यान-मग्नमना भूत्वा, तन्मार्गणरतो भव,
भविष्यति शिव प्राप्तिः, शृगाल-भषणेन किम् ॥ १६१ ॥

रेहान (पुष्प-विशेष) की लता से कभी सुगंध नहीं जाती और कुत्ते की खाल से कभी कर्पूर की सुवास नहीं आती । (रे मनुष्य ! तू) यदि ध्यान-मग्न होकर उसको ढूँढे तो तुझे परमशिव की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा गीदड़ की तरह चिल्लाने से कोई लाभ नहीं है ॥ १६१ ॥

आयस ति स्योदुय तु गछु ति स्योदुय,
सेदिस होल मे कर्यम क्याह ।
बो तस आसुस आगरय व्यञ्जुय,
व्यदिस तु व्यंदिस कर्यम क्याह ॥ १६० ॥

समागता सरलमनास्तथैव,
गन्तास्म्यहं सरलस्वभावरवता ॥ २३
कि मे करिष्यति शठः शिवज्ञातभावा,
किवा शिवोऽपि कुर्यान्मम निर्भयायाः ॥ १६० ॥

मैं सीधी ही आई थी और सीधी ही जाऊँगी भी (अर्थात् जन्म से ही मैंने सरल स्वभाव अपनाया और अन्तकाल तक इसी सरल स्वभाव को अपनाऊँगी) मुझ सीधी को भला टेड़ा (शठ स्वभाववाला) क्या करेगा ? क्ये (परद्रह्य) तो मुझे प्रारंभ से ही जानते-पहचानते हैं अतः मुझ जानी-पहचानी का वे भी भला क्या कर सकेंगे ? (अर्थात् अपनी सहज सरलता के कारण मैं निर्भय हो चुकी हूँ) ॥ १६० ॥

अंदर आसिथ न्यबर छोडुम,
पवनन रगन करनम सथ ।
द्यानु किन्य दय जगि कीवल जोनुम,
रंग गव रंगस मीलिथ क्यथ ॥ १६१ ॥

अन्तस्थितस्य देवस्य बहिरन्वेषणं कृतम् ।
प्राणायाम-प्रयासेन, तस्यावाप्तिर्मया कृता ।
ध्यानयोगेन प्राप्ताऽहं, कैवल्यपद दुर्लभम्,
तेज मे रूपसौभाग्यं, तस्य रूपेण संगतम् ॥ १६१ ॥

वे मेरे अन्दर थे मगर मैं उन्हें बाहर ढूँढ़ती रही । तब (प्राणायाम द्वारा) मुझे अपनी रगों के माध्यम से साँचना मिली और ध्यानादि योग-क्रिया से इस जगत् की कैवल्य सत्ता को जान लिया । परिणामस्वरूप मेरा रंग (जगत् के) रंग से मिल गया ॥ १६१ ॥

कुस हा मालि लूसुय नु पकान पकान,
 कुस हा भालि लूसुय नु बौलगान सुमीर।
 कुस हा मालि लूसुय नु मरान तु ज्यवान,
 कुस हा भालि लूसुय नु करान न्यंदा ॥ १६२ ॥

हा ! को न श्रान्तो मार्गप्रयाणे,
 हा ! को न श्रान्तोहि सुमेरु-लङ्घने ६७
 हा ! को न श्रान्तो मरणादिचक्रे,
 हा ! को न श्रान्तोहि परस्य निन्द्या ॥ १६२ ॥

कौन चलते-चलते थका नहीं ? कौन सुमेरु पर्वत को लाँघते-लाँघते
 थका नहीं ? कौन जन्म-मरण के चक्कर से थका नहीं ? और कौन
दुसरों की निदा करते-करते थका नहीं ? ॥ १६२ ॥

जल हा मालि लूसुय नु पकान-पकान,
 सिरयि लूसुय नु बौलगान सुमीर।
 चन्द्रम लूसुय नु मरान तु ज्यवान,
 मनुष्य लूसुय नु करान न्यंदा ॥ १६३ ॥

जल न श्रान्तं हि प्रवाह मार्गे,
 सूर्ये न श्रान्तो हि सुमेरु-लङ्घने ६८
 चन्द्रो न श्रान्तो मरणादिचक्रे
 नरो न श्रान्तो हि परस्य निन्द्या ॥ १६३ ॥

जल चलते-चलते थका नहीं, सूर्य लाँघते-लाँघते थका नहीं, चन्द्रमा
 मरते-जन्मते थका नहीं और मनुष्य निदा करते-करते थका नहीं ॥ १६३ ॥

कुस बब तय कौसु माजी,
 कमी लाजी बाजी बठ।
 काल्य गछव कांह ना बब माजी;
 जानिथ कवु लाजिथ बाजी बठ ॥ १६४ ॥

कस्ते पिता का जननी तवास्ति,
 केनापि साकं कथमस्ति संगमः । ६२
 विहाय सर्वं गमनं भवेद् यदा,
 न कापि माता जनको न कश्चित् ॥ १६४ ॥

कौन तेरा बाप और कौन तेरी माँ ? किसके साथ तू सम्बन्ध
 जोड़ रहा है ? कल तू यहाँ से चला जायगा और फिर तेरा न कोई
 बाप होगा और न माँ । यह सब जानकर तू (व्यर्थ के) सम्बन्ध क्यों
 जोड़ रहा है ? ॥ १६४ ॥

काली सथ कौल गङ्गन पाताली,
 अकाली जल मालु वरशन प्यन ।
 मानस टाक्य तय मसकिय प्याली,
 ब्रह्मन तु ब्राली इकवटु ख्यन ॥ १६५ ॥

तादृक् कुकालोहि समागमिष्यति,
 रसातलं यास्यति सप्तलोकी । ६०
 अकालवृष्टिजंगतीतले भवेत्,
 चाण्डालवद् ब्राह्मण-भोजनं भवेत् ॥ १६५ ॥

ऐसा कुकाल आएगा कि (पृथ्वीलोक पर बढ़ रहे पापाचार के
 कारण) सातों लोक रसातल में चले जाएंगे । तब असमय वृष्टि होगी
 और ब्राह्मण व चाण्डाल एक साथ मांस-मदिरा का सेवन करेंगे ॥ १६५ ॥

अट्टुच सन दिथ थावन मटन,
लूब बौछि बोलन ग्यानुच कथ ।
फट्ट फट्टय नेरन तिम कति वटन,
त्रुक्य मालि छुख पूर कड पथ ॥ १६६ ॥

थे छधवेषाः स्थित चौरवृत्तयः
प्रदर्शने ज्ञान कथाऽभिभाषिणः
प्राप्तं न किञ्चन्मम सन्तिधानात् । १६८ ॥
॥ ५५ ॥ प्रबुद्ध ! द्वारात् त्यज पापचारिणः ॥ १६६ ॥

कुट्टेल व छधवेषी इधर का माल चुराकर उधर कर देते हैं और
ऊपर से (मारे लोभ के) ज्ञान की बातें बखानने का स्वांग रचते हैं ।
ऐसे लोग मिथ्या-प्रदर्शन खूब करते हैं, वे भला इससे पाएँगे क्या ? यदि
(रे मनुष्य !) तू प्रबुद्ध है तो ऐसे मिथ्याचार से पग पीछे हटा ले ॥ १६६ ॥

संसार नाम्य ताव तंत्रुयः
मूडन किञ्चुय तावनु आये ।
ग्यान मुद्रा छय यूगियन किञ्चुय,
सु धूगु कलि किन परजनु आये ॥ १६७ ॥

तप्तमृजीषं विश्वाख्यं, मूढानां कृते सदा । २७ ॥
ज्ञानरूपं तदेवास्ति, योगिनां विदितात्मनाम् ॥ १६७ ॥

संसार नाम का यह तवा मूडों के लिए तपाया गया है. मगर ज्ञान-
मुद्रा योगियों (प्रबुद्धों) के लिए है जो योगकला द्वारा संसार के माहात्म्य
को पहचान लेते हैं ॥ १६७ ॥

सोबूर छुय ज्युर मरुच तु तूनुय,
ख्यनु छुय ट्चौठ तु खेयस कुस ।
सोबूर छुय सौनु सुंद टूरुय,
मौल छुय थोद तु हेयस कुस ॥ १६८ ॥

विषयिणां भाति सन्तोषः, कटुतिवतादिखाद्यवत् । १६९ ॥
तुल्यं सुवर्णपात्रेण, कस्तं मूल्येन क्रेष्यति ? ॥ १६९ ॥

सब्र (सहिष्णुता) जीरा, मिर्च और नमक के समान (कहवा) है
जो खाने में कड़ा लगता है । सब्र सोने की याली है, जिसका मूल्य
ऊँचा है, अतः इसे खरीदेगा कौन ? (सहिष्णुता का गुण कष्टसाध्य और
दुर्लभ है, इसके लिए बड़े से बड़े त्याग की आवश्यकता है) ॥ १६९ ॥

साहेब छु बिहिथ पानय वानस,
सारिय मंगान केंछाह दि ।

रोट नो काँसि हुंद राँछय नो वानस । । १५४ ॥
यि त्रै गङ्गिय ति पानय नि ॥ १६९ ॥

स्वामी स्वयं पण्यगृहं विधाय,
स्थितस्ततो याचन-तत्परा जनाः

न तत्र कस्यापि निषेध-बाधा
नयस्व यव् वाञ्छसि त्वं सदेव ॥ १६६ ॥

साहिब (ईश्वर) स्वयं दुकान लगाये बैठे हैं । सभी उससे कुछ
मांग रहे हैं । (रे मनुष्य !) वहाँ किसी की रोक-टोक नहीं है । तुझे
जो भी चाहिए स्वयं उठाकर ले जा ॥ १६९ ॥

संसारस मंज बाग कथ शायि रोजय,
रोजि परम शिव शंबू अधूर ।
लौलि मंजबाग बोय ललनावन,
जिगरस मंजबाग करस गूर गूर ॥ १७० ॥

तिष्ठानि विश्वेऽस्मिन् कुव्र, यस्मा-
दघोर-शम्भुः सर्वत्र राजते ।
आन्दोलयिष्यामि तमेव क्रोडे,
प्राणेन साकं मृदु लालयामि ॥ १७० ॥

अब मैं इस संसार में भला किस जगह रहूँ क्योंकि यहाँ तो हर-एक स्थान पर परमशिव अघोर शंभु रहते हैं। अतः मैं तो उसी को गोकी में लेकर झुलाऊँगी तथा जिगर से लगाकर ढुलाऊँगी ॥ १७० ॥

दोद क्या जानि यस नो बने,
गमुक्य जामु हा वलिथ तने।
गरु गरु फीरुस प्ययम कने,
ड्यूठुम नु कांह ति पननि कने ॥ १७१ ॥

यस्योपरि स्यान्नच दुःखपातः
परस्य पीडां स कथं हि विद्यात् ।
कष्टावृतायां मयि प्रस्तराहति,
ने कोऽपि जातो मयि सानुकम्पः ॥ १७१ ॥

जिस पर दुःख न पड़ा हो, वह भला दर्द (की पीड़ा) क्या जाने ?
गम के वस्त्र पहनकर मैं घर-घर फिरी और मुझपर पत्थर बरसे तथा
किसी को भी मेरा पक्ष लेते हुए न देखा ॥ १७१ ॥

ओरु ति पानय योरु ति पानय,
पौत वाने रोजि नु जांह ।
पानय गुप्त तु पानय ग्यानी,
पानय पानस मूद नु कांह ॥ १७२ ॥

इतस्ततोऽसौ सर्वत्र दृश्यते,
न त्रुप्यते दृष्टिपथे कदाचित्
गुप्तोऽपि ज्ञाता सर्वस्य मध्ये
स एव सर्वामरचक्रवर्ती ॥ १७२ ॥

उधर भी वही और इधर भी वही (अर्थात् जिधर भी नज़र जाती है, उधर वही दिखते हैं) वह कभी पीछे रहने (छिपने) वाले नहीं हैं। वह स्वयं गुप्त भी है और ज्ञानी भी। वह कभी मरा नहीं—अमर है ॥ १७२ ॥

आसुस कुनिय तय सांपनिस स्यठा,
नज़दीख आसिथ गंयस दूर ।
बाहिर बातिन कुनुय ड्यूठुम,
गंयम छयथ-च्यथ चुवंजाह चूर ॥ १७३ ॥

एकापि दृश्येऽह मनेकरूपा
पाश्वस्थिता ! तस्य तथापि दूरम् ।
कृत्वा हि मां दूरतरं गतं हा !,
चत्वारि पञ्चाशच्चौरमण्डलम् ॥ १७३ ॥

मैं एक यी मगर अनेक बन गई। (उनके) नज़दीक होकर भी दूर रही। बाहर-अन्दर एक ही (शिव) तत्व मुझे दिखा था (जिसे आप्त करने के लिए मैं छ्यान-मग्न हो गई) किन्तु ये चौपन चोर (पंचेन्द्रियाँ, आवेग, विकार आदि) सब कुछ खा-पीकर मुझे धोखा देकर चले गये ॥ १७३ ॥

अजपा गायत्री हंसु हंसु जपिथ,
अहम त्राविथ सुय अदु रठ । १७३
योग्य त्रोव अहम सुय रुद पानय,
बो न आसुन छुय बौपदीश ॥ १७४ ॥

मनसाऽनुशवासं जप हंस-हंस-
महं-विमुक्तो कुरु ब्रह्मचिन्तन् ६
अहं-विरक्तो हि रम स्वरूपे
तवानुरूप उपदेश एष ॥ १७४ ॥

(रे मनुष्य ! तू) अजपा गायत्री मंत्र का अपना प्रत्येक सांस में जाप कर। अहं को छोड़कर उस (ब्रह्म-तत्त्व) को धारा कर। जिसने अहं को त्याग दिया वही स्व (आत्मभाव) के रूप में स्थिर होता है। उपदेश की बात भी यही है कि 'मैं' को अस्थायी मान ले ॥ १७ ॥

दमु दमु ओमकार मन परनोदुम,
पानय परान तु पानय बोजाम ।
सूहम पदस अहम गोलुम,
तैलि लल बो वाच्चुस प्रकाश स्थान ॥ १७५ ॥

ओङ्कार-पाठं मनसे प्रतिक्षणं
प्रशिक्षयन्ती स्वयमेव शिक्षिता ।
'सोऽहं' पदं प्राप्य विमुक्तमाना,
लल्लाऽहमाकाशगतं प्रपन्ना ॥ १७५ ॥

इस मन को प्रतिपल ऊँकार पढ़ाती रही, स्वयं दाती रही औ स्वयं ही सुनती भी रही। 'सोऽहम्' पद को प्राप्त करने के लिए 'अहम्' को गला दिया तब कहीं जाकर मैं लल प्रकाश-स्थान तक पहुँच सकी ॥ १७५ ॥

यि क्याह आसिथ यि कुस रंग गोम,
बेरंग कर्सिथ गोम लगु कमि शाठय ।
तालब राजदानि अबख छान व्योम,
जान गोम जान्यम पनु नुय पान ॥ १७६ ॥

काऽसं पुनः सम्प्रति काहि जाता,
स्थिता सदा 'तालब राजदानि' वत् । २००
वशीकृता 'अबखछान' समेत स्वात्मना,
कि भाविमेऽन्न विषये मन एव विद्यात् ॥ १७६ ॥

मैं क्या थी और क्या हो गई। (परमात्मा का ही एक अंश थी किन्तु जन्म लेकर जाने यह किस रंग में रंग गई।) यह मेरा मन मुझे बेरंग बना के छोड़ गया, अब पता नहीं किस ठौर बहाकर पटक देगा। मैं तालबराजदानि जैसी (संयमी और दृढ़-प्रतिज्ञ) यां किन्तु इस अबखछाने रूपी मन ने मुझे मुग्धकर वश में कर लिया। अब मेरा आगे क्या हाल होगा, अच्छा होगा कि बुरा, मेरा दिल ही जानता है ॥ १७६ ॥

करुम जु कारन त्रे कौमविथ,
यवु लबख परुलूकस अंख ।
बौथ खस सिरी मंडलस चौमविथ,
तवय चली मरवृथ शंख ॥ १७७ ॥ ४४

द्विविधं कर्म जानीयात्, त्रिविधं कारणं मतम्
समाहर कुम्भकेन्द्र, प्राप्यते परमं पदम् ।
उत्तिष्ठोद्यतो भूत्वा भित्वा सूर्यस्य मण्डलम्,
अनेन विधिना सर्वं, मरणादि तत्र नंक्षयति ॥ १७७ ॥

कर्म दो तरह के (सत् और असत्) तथा कारण तीन तरह के होते हैं। रे जीव ! तू कुम्भक-योग से सबका समाहर कर जिससे तुझे परलोक में परम-पद की प्राप्ति होगी। तू उठ और सूर्यमंडल को पार कर परमगति को प्राप्त करने के लिए उद्यत हो। इसी से तेरा मरण-भय भी दूर हो जाएगा ! ॥ १७७ ॥

मद प्यौवुम स्यंदु जलन येती,
रंगन लीलम्य केम्य कांत्रि ।
कृत्य खोयम मनुश्य मामसुवय नंली,
सौय बो लल तु गव मे क्याह ॥ १७८ ॥

अध्यागताऽहं बहुजन्मजातं
पीतंमया सिन्धुजलं प्रभूतम् ।
मांसादनं वहुविधा लीलाव्यधाथि
पश्चाच्च चिन्तनपरा तदभिन्नरूपा ॥ १७९ ॥

मैंने कई जन्म लिये, कभी छक्कर सिन्धु का जल पिया, कभी संसार के रंगमच पर तरह-तरह की लीलाएँ कीं, कभी मांस आदि का भी भक्षण किया—मगर अंततः पाया कि मैं तो वही लल हूँ फिर यह आवागमन का चक्र कैसा ? ॥ १७९ ॥

मरिथ पंचबूथ तिम फल हंदे,
चेतनु दानु वौखुर ख्यथ ।
तवय जानख परमु पद छांडि,
हिशी खोशि खोर केह ति नु ख्यथ ॥ १८० ॥

अस्मिन्नहो भौतिक कायमध्ये
स्थितंहि पञ्चेन्द्रिय - मेष - वृन्दम्
तस्मै त्वया ज्ञान-कणास्तु देया
हत्वा पुनर्दिव्यपदं प्रयाति ॥ १८१ ॥

रे व्यग्र प्राणी ! अपनी पंचभूत काया में स्थित पञ्चेन्द्रियों रूपी मेषों (नरभड़ों) को तू अध्यात्म-ज्ञान का दाना (खाद्य) खिलाओ और तत्पश्चात् उनका वधकर । इसी से तुझे परम-पद की प्राप्ति हो जाएगी, अन्यथा ऐसा न करने पर कोई लाभ न होगा ॥ १८१ ॥

Posten Lal Bhaw

سر آڈھ کار سو کھتے ہے
Posted 5-5-1979 Sunday

شہری لال شوری و اکیم

ارکھات Lal
Roshen

(لال و اکیم)

لیکھا ہے یہ بیٹھتا ہے جیسا تھی تیر کھونے والے مغل نیا سفر کی پوندہ پورہ ریگ

پورا ناٹک سیا شریز پیش کرتے شندہ لال رینہ دیز بدر کل مالک دیر پیدا ناٹک بدل
پڑناک طلنے کا پتہ ۔

لیکھا ہے سفری سیا شریز کا اور کوئو جر کنہ سری شری

لیکھا ہے قیر شریدا گاہ پورا ناٹک دیر اکل مل مل مل

لیکھا ہے سفری سیا شریز کا وہی چک پتت ناٹ کشش

لیکھا ہے اسی دھی جیوں شی پوندہ بورہ سد ناٹی فر آدھ جر کل اسی دھی

راؤں (اول) - ۱۹۷۹ء

سناریو اس سے بڑھ کر ان مول رتن بھارت دیسول کو مل ہی نہیں
سکتا۔ اس گرفتار کا ساری ہے کہے دکھت منشو اٹھو۔ چاگو۔ سادھاں
ہو چاہو۔ سریشٹ ہپا پرشوں کو کھوچ کر ان کے دوارا اس پریس
پریشٹ کو جانی لو۔

سوانح عمری شری نلیشوری

لکھی شوری چودھری صدی بکری کے آغاز میں جس وقت کے
کشیرین مسلمانوں کا راجح تھا اگرری ہے کشیرین پانڈو کے
نزویک موضع پر میں ایک بیہن کے غصہ میں بھاروں پورناماشی
کے دن جنم دھارن کی۔ ماں پاپ نے اس کا نام پدھارنی رکھا۔ تیرہ
یوگہ سال کی عمر میں اس کی شادی موضع (پرانا پور) سوجوہ پانچور
میں ہے۔ یک بیہن کے گھر میں رہا۔ گئی۔ خانہ داری کے اجھن میں پڑ کر
بھی یہ دیوی شروع سے بہتچارنی کی زندگی لیس کرتی۔ رہی۔
سسرال میں دیوی کو پتی اور ساس نے حد سے زیادہ دکھ
انداشتی۔ مگر یہ دیوی سب پھر سہن کر کے اپنے شم اور دعہ
میں رہ کر مون ہی دھارن کرتی رہی یعنی سُن کر بہری اور
دیکھ کر اندر چلی جیسی آہستہ اس کو دیکھ کر روگ بھی
چھوٹنے لگا۔ پورا بھیاس کا کرم پھل پورا پکنے پر اس دیوی کی
نئے گھر بھٹک کے جھٹکے کو خلا جعلی دے دی۔ پکر بھم پریشٹ پر کے
پریم میں شوہشو پکار کر اس نے گھر کو تیار دیا۔ پھر اس

لکھنؤٹی و الکھنؤٹی

شری نلیشوری و اکھر گرفتار کی کہانی

پلیس پانچھڑا اسی کو کہنا چاہیے اس سے بھکتی بڑھے۔ پرانی
بڑھے۔ میں شانشی اپنے ہو سے۔ پڑھنے میں بھی بڑھے۔ اگر یہ لہیں
اوگتھی سے بھکتی ہو سے۔ تھک اُن ہی کچھشتوں کا بیشتری تاریخ
گرفتار ہے۔ سرت پرشوں۔ ایسا کوں اور یوگیوں کے دیواری کے لاین
یہ ایسا ادویت دیدار کا شجو میئے ہیں۔ ہیں۔ بہن۔ آتم دیدا
اور تھتو ویکھن اور یوندر یونکھ پر کارنے والے اکام۔ کرددہ۔ تجھ۔ مگہ اور
میں پہن کر مٹانے والے اور کوڑھ پر کوڑھ کو۔ تھوڑے میں سمجھا دینے
والا اور ادھیا تھاک پوری اوس تھاک کی تیجیاں کرائیں والے۔ گان۔ کرم
بھکتی اور یوگ کا میل کرائیں والا سارے دکھت منشوں کو شانشی
لئے کر بخکام۔ آپوں میں لگانے میں والا شریم بدھکوت گیتا۔ پیشند
ادویت دیدار۔ روگ اور گیان کا ہنسیہ سمجھا دینے والا سارے

اور پچھلے جنم کے بعد میں کا سب کچھ میرے لگ جاتا ہے کہ کس اپنے کلا کی یوگن یعنی گھری ہے۔ اس دیوی کے امرت بھرے دیکھوں کے انوار اور کرنے ہیں، جن گز نہیں کے پرمان رئے ہیں وہ یہ ہیں۔ فخر میر بھگوت گیتا شنکر بھاش۔ گیتا رہیسیہ بھگوان نلک۔ گیتا گیان ایشوری۔ اشنا و کر گیتا (اپنے دیوی) ایش۔ ایشوری۔ پرشن۔ پیشہ۔ چھاند و گیرہ۔ شویتا شنگ۔ گیت۔ سکھہ و لی۔ مارڈ و گیرہ۔ منڈ و کس۔ پیچ بندو۔ نادہ بند۔ جھو۔ اور گر بھد۔ پیشہ۔ ہب بھارت۔ مانکھیہ شاسترا اور ویرانت پانچھلے یوگ درشن۔ درشن۔ درس بود۔ اپر و کھانو بھوتہ شنکر بھاش [دیوان حافظ فارسی۔ مشنوی مولانا نارووم۔ مشنوی یو علی قلندرہ فارسی اور بکیر شبد اولی کے پرمان دئے گئے ہیں۔ اپنے اپنے دیکھے پر پورا نام لکھا گیا ہے امید ہے کہ ہندیا اور انگریزی بھی جلدی شائع ہو جائے گا یوکر اس وقت زیر نگرانی ہے۔

اوادک کی بھومنکا

ہے ادم کا رسروپ ویگن ہر تائیش۔ ہے پر بہم پر ما تر دیو
آپ کو نہ کار ہو۔ سویم آپ ہی اپنے کو جانے والے ہو۔ ہے
آتم رسروپ پر بہم پر ما تر دیو میں نیو رت کا دا اس آپ کو ہی
یہ سہم پر کرتا ہوں آپ ہی شکل اور تھہ اور بھی کے پر کاش کرنے
والے گئیں ہو۔

دیوی نے مہاتما یو گیش ورثی میڈالو کو گورودھارن کر کے اُس سے گورود پلیش بھی لیا۔ گورود پلیش کی سادھتا میں نرینتر پیسا کرتے کرتے پر مہر تیاگی درتی بن کر سدار کے اورہ کوئی بھی اور نہ کری ہوش ہی رہا اور ایک دیوانے کا طرح بنگی ہی پھر نہ لگی۔ نچے اس دیا گلی جان کر اس کے اور پر بھی اور پتھر پھینکنے لگے اور اس جان یا نامی پر شس اس کو ٹوپا بھلا کہنے لگے تب پھر بزرگوں نے مل کر پدمادتی کو سمجھنے کی کوشش کی کہ ماں اپنے بدن کو ڈھانپ لوتا کر لوگ آپ کو تنگ نہ کریں۔ لوگوں نے بہت سے کڑے لاکر پیچھا دی چھوڑا اور اصرار کرتے رہے کہ ماں دستر دھارن کرو۔ کہتے ہیں کہ پھر اس نے اپنے پیٹ کو بڑھا کر کھینچا اور پر بھ کھڑے کو مشک کی طرح بلا کر کے لٹکا دیا اور اپنے آپ کو اُسی سے ڈھک دیا۔ اس طرح کی پیٹ کو کشیری زبان میں انہیں کہتے ہیں۔ پھر دلوں کے بعد جب وہ پُرورن یوگ بھوت بن گئی اور داکھ سیدی ہو کر اس کے امرت رُقی دیکھہ شبدوں سے پڑے پڑے رشیوں کو گیان آئے لگا۔ پھر اس وقت کے مہانو بھاوا تھوڑت رشی لوگ اس کو بہت اونچی کلائی جان کر یوگ ایشوری اور نل ایشوری کر کے پکارنے لگے۔ ماں بیلی شوری بھی اپنے دیکھوں میں اپنے آپ کو نل ایس نام کر کے چکار تھی۔ ہے۔ اس ایشوری کے واکیہ بہت اونچے کلاکے اپنے شبدوں اور فخر میر بھگوت گیتا کے ساتھ بول کھاتے ہیں۔ بیوی عیمان پر شویں کو اس ایشوری کے دیکھوں سے ہی کہ اس دیوی کا سارا جنم پھر تر

لوبیدن۔ قریباً ۲۰ برس کی بات ہے کہ ایک ہبھاتا ساکھشات
ایش روپ بن کا نام شری نیل کنٹھ بھی تھا۔ یہ بھی اُن کے
درشن کرنے کے لئے جایا کرتا تھا۔ ایک دن کی بات پرے کے میسرے
میں میں سنار آدمیں روپی ڈکھ کے سورتی ہونے کی چلتی لگی
تھی اچانک سوچی جی نے اپنا سر اٹھا کر میرے کان کے نزدیک
لاکر تین دفعہ ہلکے سے یہ گلتاں انگ بیاس والے سشید سکے
(پارا شریہ دچا سر و جم اعلیم) سوچی جی کے ہمکھاں بندے سے یہ خد
حستے پرچھے شری بھاوت گلتا کے پڑھنے اور وچارے کے لئے
بھادنا تین ہوئی۔ میری پڑھاتی کم تھی اس کرکے ہندی انواد
دلے گلتاں اور اپنے دو کشیر میں پچھے ہوئے مل و اکیر پڑھنے
ازمید تھے۔ ایک دن میں منڈوک اپنے سشید میں درخت دھیان یوگ
کا انواد پڑھتا تھا جس کا انواد اس طرح کا ہے۔ اپنے دلیں ورنت
پر نو روپ ہمان استردھن کر لے کر پیچھے ہیا اپاسنا دوارا
یتکھن کیا ہوا بان پڑھاۓ۔ پھر بھاوق پورن چت کے دوارا
(میں بان کو کھینچکر ہی پڑیہ اس پر مر اکھر پر شوتم پریشور کو
لکھیے بان کر بیدارے۔ یہ پڑھتے پڑھتے پیچھے ریشوری کا یات
ایسا ہی داکر نیاد پر ٹا جو کہ اپیشوری نے اسی دھیان یوگ میں
بگڑنے پر یوگی کو سمجھایا ہے۔ وہ یہ ہے (اچھہ ہار تجھ پڑھی
کان گوم۔ ایک پھلان پیوم۔ یتھر رازدانے) یہ داکر ہم نے
ادھیاۓ ۳۔ داکر ۱۱ میں دیا ہوا ہے وہاں سے پڑھ کر سارا
مسجد آجائے گا۔ اور بھی بہت سارے داکر دیکھنے پر پتہ چلا

کہ ماتا ایشوری نے یہ داکر اپا مکول اور سناری پر شول کے
وچارے کے لئے بارہ بار پرستگ اور سنار تھات ڈسے
ووہ سرے شیدول اور دوسرے دوسرے بہت درشتانیوں میں
اسی تھو کا تیجھن کر کے یہ سوچ کر کر کسی بھی طرح سے وہ ادھت
پر بہم پر ماتھا۔ ان سناری ڈھت پر شول کے یدھ گوچھر ہو کر
سنار کی تیورتی کا کارن ہو۔ بہاریت پریلانٹ کے واکیوں
کا تھو مئے گیان اپدیش درن کیہے۔ پیشجات میں نے انواد
کرنے کی اچھیا سے ایشوری کے داکر روزانہ پڑھنے از مید
کردئے۔ تب مجھے معلوم ہوا کہ ان واکیوں کا انواد کرتا مجھ
بھیسے اپنے بندھی ملش کے یوگیت سکے باہر کی بات ہے اور یہ
کوئی پیش اور بھیجی بھیسے سادھارن ملش کا کام نہیں ہے پرستو
انہتے کر نوں میں پوڑا و شو اس تھا کہ سیتہ سنکلب کے داتا بھگران
کر شون کر پا کر کے میرا مسونر تھ اوس پوڑن کوئی گے دب قریباً
نو سال سے دن داکیوں کے انواد کرنے میں تکھوچ کرتے کرتے
اور اپنے دلے گلتا اور بھت سارے دوسرے پھٹکوں کے ساقد جوڑ ملاب
کرتے کرتے یو جو داکر مسونر تھا اگر میں کو قلم بند کر کے اپنے اپنے ادھیلے
اور سعیدھ کے ساتھ بان تھ بوڑا کر لائھارا۔ ایسا کر بھو بھی دیک
داکر کے پیچھے میں ران تک سوچتے سوچتے لگ گئے۔ مگر کیا یہاں سے
یہ کام قدرت نے میرے کرموں کے لکھاری میں لکھا ہے اس کر کے میری
پرورتی ہی کے اور دن بدن پڑھتی گئی۔ ایسا کر بھی دیک
امانت تھو اسٹ کشید۔ تریغہ قال بنام من دیوان زندگی (دیوان عاظ

پہنچ اور حیاتی

ادم اور حیاتی اور حیاتی سو روم
ادمی کھنکھم پر من پیان
انٹ میڑ اور حیاتی نہ کھنکھی برو سٹم
توئے پرو دوم پر مس تھان (۱۵)

لشکر کے (جو بھی کچھ یہ سالا برہمنا بلکہ تھے) اس کا آدم کا رنگ کاں یہ یک ادم کا اسروپ پر برہم تھا ہے۔ اسی ادم کا رنگ پر برہم کو تنو سے جان کی بیرنے سادھنا بھی کی اور اپنے آپ کو بھی ادم ہی جان کر بھرا یا۔ اس انت نا شوان (مسنار کی سب کامناؤں) کو شیاگ کر پھر میرے کو یک ہی نیت اوناشی پر برہم بنا سئے رکا۔ نب ہی پھر میں نے پرمس تھان (لگتی کا دام) پر پت کیا۔

پرمان۔ سپورن وید جس پر مید کا یادیار پرست پادن کرتے ہیں اور سپورن نب پس پر کا نکیبہ کرتے ہیں جس کو چاہتے وہ سادھا کن بھرہ پر کرے کا پان کرتے ہیں وہ پر میں ہمیں ستکھیپ سے بتلاتا ہوں۔ وہ ہے ادم ایسا ایک اکھشیر یہ اکھشیر ہی تو برہم ہے اور یہ اکھشیر ہی پر برہم ہے اس لئے یہی ایک اکھشیر کو جان کر جو جس کو چاہتا ہے اس کو وہی مل جاتا ہے۔ یہی انت اتم امین ہے۔ یہی سب کا انت اکھشیر ہے اس امین کو بھلی بھانستہ جان کر سادھاک برہم کو کی میں جہا نیوت ہوتا

اور جو جسیسے بال بھی اپکیت سے یہ میرا ایسا پر شرم کرنا صندور کو منہنا ہے اور اسی بھی دل میں ایسا بھی خیال آتی ہے کہ داہمہ نہ سدرس نا وہ چھس لمان (معنچ پرچھ تریوگ ایشوری اپنے داکیوں کا بھاؤ ار قدر آپ ہی یا جانتی ہے۔ دوسرا بات یہ ہے کہ سوریہ پر کاش جیسے بیٹھیا اور ددوان جہا قبھاؤ پنڈرت جنوں کے سستو کھد یہ میرا دیوا جیسا پر کاشت کرتا ہے۔) ازدادک جس گوپی تا تھرینہ

جو جسی بیٹک پھیانے کا کوئی خیال نہ تھا کیونکہ اس کا بھی تیر را بھاگ تیار نہیں ہوا۔ مگر مجھے اپنے برادر پنڈت نہ لالی جو بیڑتے اور اپنے ہم کے لئے عزیز دیر پڑا جی کوں ماںک ویر پڑا بیک ایکنی ایمر اکیوں اور گرد جہا راج جو تشتی شری کا شناختی ہے اور نہ اس پیٹک کے چھنٹتے کے لئے بھوک کیا جائیں شری رام چندر در لاپریں دیسرچ دیپاں شستہ اسنا نگر کے مزاد ہاتھ دل سے شکر کیڑا ایکوں۔ مہا جو ملوف نے اکلیستک کے نیار کرنے میں بہت ہی ہمدردی اور تراخملی سے مدد دی۔

اس گزندق یہی، جو داکیم ہدت مشکل دیکھ پڑتے ان داکیوں کو پہنچنی ارتھ اور اس کے یچھے دیا کھیاں میں پورا ارتھ سمجھایا گیا ہے۔

بسو ای امساراہم وہی مہاراج سے عنایت شدہ

میں نے شری گوپی نا تھد جی کا نیا چواں کیوں پر ترجمہ یعنی پیکا سہت ازداد کو بغور سنا فی اواقعی پنڈت بھی نے ہدت حمفت کی ہے اور ختے اور سعیل داکیوں کو شری بھری کے انکوں بنا نے میں طاپریتی کیلے جس کا میں دھنیہ وادیہ ناہوں۔ اب ان داکیوں سے لا بھ اٹھانا بھکتوں اور سالکوں کا کام ہے جو کسکے پنڈت جی نے اچھے طرح سے تھدیر درش کیا ہے۔

(امارام رنجیاری۔ گوپی نی گندم)

ہے۔ یہ اپدیش ہمارا جنگی کیٹ کو کرتے ہیں۔ (کچھ اپنہ ۱۵/۱۵)

گورس پر۔ دشمن ساہی لے
یہس نہ کنہ و نان۔ اس کیاہ تا
پیرشان۔ رشان اچس نہ تو سس
کنہیں۔ لشی کیاہ تان درا

گور و ہمارا ج سے میں نہ ہزار بار ارتحات ایک بار پوچھا جس کو

چھوٹھی نہیں کہتے (ارتحات جس بہم کا سروپ جلتے کہتے اور انھوں کرنے
میں کچھ بھی نہیں آتا) اس کیا نام ہے۔ ایک بار پوچھتے تو جھنٹے تک گئی
اور ہار گئی۔ اس بہم کا سروپ کچھ بھی انھوں میں نہیں اس کر کے گور د
کے چکپ رہنے میں سے یہ تو فی متوجہا دچار کرنے کے لئے نکلا۔

دیدار سو نو۔ ۱۔ بیانے۔ ۲۔ پاد۔ ۳۔ منترے میں ایک ایسی ہی
لختا آنہے یہ کہ بہمیا باشکنے پسے گور و ہر شے ہمہ سے پرشن
کیا۔ ہمارا ج جھٹے کیا کر۔ بتلائیں کہ بہم کس کہتے ہیں۔ تب برشی یا منہ پچھو
بھی نہیں بولے۔ باشکانے پھر بھی وہی پرشن کیا۔ تب بھی گور و پچھو نہ بولے
جس ایسا ہی ایک۔ ہوا تب گور و ہمارا ج نے باشکلے سے لے۔ اے میں
تیرے پر شنون کا نتھی سے دے رہا ہوں۔ پر منتو تیرے سمجھ میں آتا ہی
نہیں۔ میں کیا کر۔ جا۔ بہم سروپ کسی پرکار سے بتلایا نہیں جا سکتا۔ اس
لئے شانت ہو۔ رتحات چُپ رہتا ہی سچا بہم کا منہ ہے۔

پیریان۔ جو بہم نہیں تکے۔ پیرگیا والا ریان سے جانستے ہیں
انے والا ہے اور جو نہ باہر پیرگیا الہے نہ دُتو اور پیرگیا والا ہے
نہ پیرگیا نہ گن ہے۔ نہ جانستے والا ہے۔ نہ ہیں جانستے والا ہے جو اور شف
ہے۔ جو دوبار میں نہیں لایا جا سکتے۔ کچھ میں نہیں اسکتا۔ جس کا
کوئی لکھن نہیں ہے جو جھنٹن کرنے میں اسکنا جو بتلتے میں نہیں
ہسکتا۔ اک ماتر اتمہ ستارہ جس کا سارہ بھی پیر کار گیا فی پُر ش
ملنتے ہیں۔ دہی پر مانہا ہے اور دہی یہا۔ پیرگیہ ہے (مانڈوک اپنہ)

منترے

گوران دیشم کو نوئی د
سید
نمبرہ دیشم اندری آڑو
شوئی مہر لکھ گو دا کھو تر دیگو
توئے ہیوئم شنگے تریں (۳)

گور و ہمارا ج جھٹے یہک ہی (ادم کار کا) شباہ کہا اور یا پر
سے اندر گھٹتے کے لئے کہا دہی گور دکا اپدیش مجھے کے لئے دا کھ
اور دھن بن گیا تب ہی میں (دیوانہ جسی بن کر) فنگی ہر نچھتے لکھی

ویا کھیا۔ گور و ہمارا ج نے نجھے ایک ہی ادم کار شباہ مکر سادھن
کرنے کو کہا اور چکھشو (آنکھ) آ۔ بتلر یوں کو باہر کر۔ شیوں سے
نٹھا کر اپنے ہی اندر اسٹرائنا کو۔ اپنے کے لئے گھٹتے کہا۔ دہی گور د
کا اپدیش مجھوں کے لئے دا کھو اور اس ارتحات والی اور جپ بن گیا۔
تب ہی ارتحات اسی ادم کار کے نزد بھیان کرنے پر میں ایک دیوانہ

جیسی بن کر پر ماں کے پریم میں ننگی ہی ناچھنے لگی۔

پر ماں۔ سویم پیکٹ ہونے والے پرمیشور نے سارے یمندروں کو باہر کی اور جانے والی ہی بنایا ہے اس لئے مشین یمندروں کے دوارا باہر کی دستوں کو ہی دیکھنا رہتا ہے۔ انتر آٹما کو نہیں دیکھتا۔ کسی ایک بھاگر شالی بُدھی مان مشن نے ہی پریم پد کو پانے کی اچھیا کوکے چھنشو آدہ یمندروں کو باہر کی ویشیوں کے اور سے لوٹا کر انتر آٹما کو دیکھا ہے (لکھی آپنہ ۲-۱)

سیند دُودِ کیاہ زاہریس نہیں

غُمکی عالمہ لہ ولیت نہیں

لُکھرہ لُکھرہ فیرس پریم نہیں

ریو ٹھم نہ کاہرہ تیر پنیرہ نہیں

(۳)

اس درد دعم کو (ارتحات پرمیشور پریاپتی کرنے کے درد دعم کو) وہ کیا جان سکتا ہے جس کو اس کا کوئی درد دعم بن کر پیش نہ آئے اور ہو اس غم کے وسپھرہ ہی میں اپنے تن ارتحات اپنے کرنوں میں پہن کر گھر گھر جگہ جگہ پھر تی رہی۔ ہر ایک جگہ مجھے مانوں کے پسخرا کے پسخرا پڑے (کون سے پسخرا) میں نے کہیں بھی کسی مشن کو نہیں دیکھا کر جو اپنے (ادھیاۓ چار) میں لگا ہو۔

بُر ماں (از دیوان حافظ) دُود آہ سبیتہ سوزان میں سوخت ای را فرد گاں خام را

محرم لا ز دل شیدا ی خود۔ کس نے بیتم ز خاص د عام را
الرخہ۔ بیسے سینے (ارتحات پوگہ بن کی چھاتی) میں پریم روپی اگ کے
دھوپیں سے نکلی ہوئی آہ کو۔ اس سنسار کے خام جماعت ہمروکھ منشوں
نے جلا ڈالا (کیوں جلا ڈالا) یہ کہ اس سنسار کے خاص د عام منشوں میں
کسی زیست کو بھی نہیں دیکھتا ہوں کہ جو اپنے لا ز دل کا خرم ہو تو ہو اپنے
آپ کے ادھیاۓ چار میں لگا ہوا (شیدا) مست ہو۔

اگلے دو ایکیوں میں یوگ ایشوری اپنے جنم لینے کے کارن کو کپاس
اور کپاس پھول کے درشتانت میں پتا کر اپنیش کر تھے۔

کل بُر دالیس کیس پو شیر سچی
سوکشم کری
کاٹر تر دُون کر نم بُر ای کر نم
تہبیہ بُلی کھار نم زادن ج تا نیہی
بُر دار دان گیم الہانیزی لیتھ (۲)

و، میں مل کیاں پھول تلاش کرنے کے سوچ بیں نکلی۔ جن لانکا نہیں دالے
چڑھی نے اپنے بھر دھنی نے مجھے بہت ہی پایاں کر کے در گھنی کر ڈالی (س)
جھب کر کاتھی دالی نے مجھے بازیک تاروں میں کات کر اور پر شہ، جڑھایا (۲)

پسخرا جلا ہی کے دوکان پر میری لاتیں مجھے ہی لٹکتی مڑیں۔

رویا طہریا:- (۱) میں مل کیاں روپی اپنے کپاس پھول تلاش کرنے کے

سوچ میں نکلی (ارتحات میں مل اپنے سوچا د روپی من اور پاچ سوکشم

یمندروں کے آسکتی میں بندھی ہوئی پر و جنم کے سنکاروں والے سخت
کرموں کے بھوگ کرنے کے لئے جنم دھارن کر کے گر بھوگ سے نکلی (۲) اور پسخرا

بند تل روپ پیاس کا بولا (گرم چلوں کا یخ) باہر نکالنے والے پر غل نے اور اتنے پر الیڈہ کر مول کے بھوگ کرنے والے دھنی نے مجھ تل روپی روپی کو پسند نہیں کی کہ ناشتمانی پا پیٹ کو بچتے پیغتے ادھر سے ادھر لیشون میں پھنسنک کر رُختی کر دی (۲۴) پیشیات کا نئی والی نے پھسل روپی روپی کو (امتحان اپنے ہی پر کر دی سوچا فکے کا نئی والی نے اپنی آپ کی سفارکے گھر روپی روپی پیچے میں با ریک سے باریک (و، سنا روپی) ناگات کات کرتے ہی سے اور کے اور کے کاماؤں نہیں کات ڈالا۔ (۲۵) وس کے بعد سنا روپی آؤں کئے جواہری شے دو ماں پر اس کا منا روپیا تاگ کے کا یا جان روپی، پکڑ پیٹے بستے میرے لائیں پداری کے اور قاتے کے نیچم کی انتی ریکیا پر ماں۔ سیم بھکوان ہستہ ہیں سنا بی بی میری سی سناں امش بھوگ مکر پکڑتے ہیں ریٹے والے من سہنڈ چمداں اور پانچ سوکشم میڈریوں کو اپنے در کھیج لیتا ہے جب یہ جھوہ آتا سخولی شریر سے نکل جانا ہے نب پر جھوک تا ان ہی من اور پانچ بندریوں کو دیسے ہی سا نہ لے جانا ہے بیسے بیسے کر پیشے آدھ سے دایا گدر کو لے جانا ہے اور جب یہ جھوگ آتا مہا سخولی شریر سے نب یہ جھوک تا ان ہی من اور پانچ بندریوں کو اپنے سا نہ لے آتے ہے اور بھر کا ان آنکھ۔ تیچا۔ بھیپ۔ تاک اور من ان ہی بچ بندریوں میں بھر کر نب جھوگ و شیوں کو بھوگ ہے۔ (اسی کا نام لڑک شریر اور سوکشم شریر ہے ریکنا ۱۵۹) اسی کو بیک ایشوری نے لیا من اور کیا تم بیوی نے کندہ میں یہ دلکھ ورن کیا ہے اور آنگ اسی سوکشم شریر کو لوگ ایشوری نے ادھیا ہے ۳۔ دلکھے میں وستا کر کے کھوں ڈھمہ پھوؤں کا درشمانت نے کر درن کیا ہے اپنی طرح وحدہ نیزہ بستہ۔

دھوپ پلہ چھا دنس دھوپ کنہ پھی
سزرت صابنا مشرشم یڑھی
پسچھے پلہ پھرشم ہمیں ہمیں کاشھی
ادھ تلہ مہہ پراوم پر مہہ گتھد (۲۶)

سیند

جس کر گر روپی دھوپ نہ پنے (وگیان روپی) دھوپ کے
پھر پر چھد (اٹل روپی پکڑتے) کو چھا دنا بہت ساری (ریگان روپیان
روپی) بھی اور سایلوں میزرس (انہی کر دی رکھتے) اور مل دیا۔ پیشہات
جہن کہ پھر را پسے ہی پر کرتے سو بھاڑ روپی، در بھنے میزرس (پکھشہوں کو دہ
بندریوں کو یا ہر دشیوں کے طرف نکل جانے کے لئے) ہر ایک پیشہ میں
(ادھیا تم گیان اور ابھیاس روپی) قیچی پھیر دی۔ تب ہی مجھ تل نے
پسہ پھی پیشہ کی۔

پس مالن۔ کرم سے پراپت ہے جلد نے والے نوکوں کی پر یکھیا کو کے بھیں
در اگھے کو پراپت ہر جائے ہے سمجھنے کے کئی نئے والے سوکھ مکم سے
سو سید نیزہ پریشوریوں مل سکتا۔ وہ دس پر یہ کامیابیان پراپت کرنے
کے لئے تھدیں نہیں کر دی کے بھلی بھانیتے جلتے والے اور ترودت
بھی بھلی بھلی کو روکے پاس ہی دلے پوروک، جائے وہ گیا فی مہماں شرمن
یک آنی ہوئی۔ لورات شانہرچت دلے من اور مینڈریوں پر نہیے پائے
ہوئے اس شرش کو، من بھر جھم ویدا کا تقو دیکھن پوروک بھلی بھانیتے اپنیش
کرے جس سے کر دہ شش، اونا شی نیتہ پر بہن پریش کو بیان نے (مندروک
اپنیش ۲۱-۲۲)

سبند پر چھپے لرے سے دارہ بُرہ تردید پریم
پرلان پر چوہ رحم ہے دیو متسکل دام
ہاگر دیپ پھر کو تھہڑہ اندر گنڈا دام
اوم کے چھپکے نسلس بُرہ (۲)

میں نے اپنے شریر روپی مکان کے ریکھشو آدہ بیندریوں والے
کھڑکیاں اور دروازے بند کئے اور پرلان روپی چور کو انتخاب پرانوں
میں چھپئے ہوئے انتر آتما پرمیشور کو اپنے دھیان میں پکڑا اور (رائس
دھیان سر دیپ پرمیشور کو) پرانوں کے نیرو دھک کرنے پر ایکاگر کر کے تھہڑا
اور اپنے پرداش کی کو تھڑی کے اندر (سامنے کا ہی ماں کر) یادھا اور پھر
اوم روپی چاہا کے نڈر نڈر سے انتخاب ہلے ہیے میں ساتھوں کے ٹیکنے
سے اوم کے چاہا کیتھا مار قی گئی۔

پرمان - نکوں میں تیل - دھی میں لگیا - ارینوں میں اگیا - سو توں میں
جل - جس پر کاروں پچھتے ہیں اُسی پر کاروں پر معاشر اپنے ہر دشیے میں
ریکھا ہوا ہے جو کوئی عادھا کسا اُس کو مستحکم کے دوارا سُمیم روپ پر
سے دیکھا رہتا ہے اُسی کے دارا وہ گریں کیا ہاتھے (خوبیا شتر
پرشند ۱۵) خریر کے دروازوں کو جندر رکھا اسی ادھیاگے و اکیہ ۲ میں اور اوم
کے چاہا کو اصیا سے ۳ وکیہ ۱۱ میں دھشی اور بیان کے پر ماروں میں پر میں

سبند نل بولو سس شہانڈان تپے گاران
عل میرہ گرمس رستے شستی
و بھس پیو متس تار ڈیمیش بیان
رمہہ تپے نل گنیبیہ زہ زوگس شستی (۸)

میں مل را پنے انتر آنکو ڈھونڈھتے ڈھونڈھتے اور کھو جتے کھو جتے
انتخاب پیسا کر تے کر تے (انکا گئی ریادھن کے مارگ مل جان کر تے میں) پیکڑوں
ہی رس بیندریوں کے راگ آنک آسیکتوں کی بیورتی کرتے کرتے جس کر قی گئی
(مارگ اور پر پھنخی پر) بج کر میں اُس کے طرف انتخاب انتر آتما کے طرف
دیکھنے لگی تو میں نے رس طرف کے داروں میں بندش پائی۔ بچھے اور بھی
شیادہ پریم کی چاہ بھھتی گئی۔ پھر میں (سمی) چاہ کے بیو بی وہیں پر (اصیاں
دواڑا) تاکتی رہی۔

سبند نل بہڑاں سو منہ با غہ برس
و چم شوں شکلت میلت تپ داہ
تپتے لئے کوڑم امرتہ برس

زندے مرض ہتہ مہ کرہ کیا ہ (۹)

میں نل دشیدھن سے (دھیان یوگ میں سخت ہو کر پہنچے ہر دشیے
رُوپی یا غ کے دروازے میں) پر مانہ کا چنن کرتے کرتے گئی۔ میں
وہاں شوکے ساتھ شکھتی انتخاب جو اتما کے ساتھ پر کرتی میں ہوئی دیکھ
تائی چاہ (بیرا شور کی ادھر ہوتی ہے) میں نے توہاں پنے آپ کو پر مانہ
رُوپی امرت کے سارگ میں ہجھتے کر دیا (ایسا کہ اس پر کرنا کے گھنوں کا
چجھ بھی اُپر بھوک نہ کر کے) میں تو ترندہ ہی (امیں پر مانہ کے پریم ہمہ وہیں
و پھر مجھے یہ پر کرتی کیا کرے گی (انتخاب ایسی ادھیا میں یہ پر کرتی
ہلکا ہے اور کہاں کا کرمہ بندھن لاگر اپن کرے گی)۔

پر مانہ - میں پر کرتے میں سخت ہو کر پر کرتے کے گھنوں کا اپنے بھوک
کرنا ہے پر کرنا کے گھنوں کا یہ سینوگ ہی پر مرض کو جھلی بُری یوگوں میں

جم لیتے کئے کاروں ہوتے رہیں (لیت ۲۱) اور اسی نام سے دیکھتے والا پریش جب خان لیتا ہے کہ پرکر تھکے گنوں کے ساتے دوسرا کوئی کرتا ہے اس ہے اور جب پرکر تھکے گنوں گنوں سے پرھے پر مالیہ تھو کریں ہیں اس بات سے تدبیح دہ بھوپر میشور کے سرروپ نیلی ہی ٹل جاتا ہے (لیت ۲۹)

یہم دیکھتے من میت مل مورون
تمہے ماریت ہتے لوگون داس

یہمی سہزہ بائیشور گورون

تمہی سودی وندن ساس (۱۰)

جس کسی جتن شیل منش نے دیکھ اور من کا اہم بھاد اور عزور (ان سب شتروں) کو مار دا اور ان سب کو مار کر اپنے آپ کو داس کی طرح (سیوک جیسا) میا ہوا (اور پھر جس کسی نے اپنے اندر کے انتہا پر میشور کو دیکھے آئند بھی ہے) کھوچ ڈالا۔ اسی نے پھر (ڈالاں سورگ نکھل آیا) کے کامنیں (سب کچھ مٹی اور راکھ کے تیہیان یا۔

سیند پر تپان یہم سموئی گون

ویم وہیوئی مون دل رکھو رات

یمسیئی اؤئے من نامیں پن

تمہی دلیو بھی سور گور ناٹھ (۱۱)

جس کسی منش نے دوسرا سب پر ایوں (اربعات میں ایادہ یش پیکھی سب جیو داریوں) کو اور اپنے آپ کو ریک ہی اتم سرروپ میں سم بھاد

سے جان کریں یا اور پھر جس کی نئے دن اور رات (اربعات شکھ) دکھ بیٹت دیتے۔ مان ریمان (ایادہ) ایک ہی ہی مان یا (اور پھر جس کی) من دو ہی بھادنا سے رہت ہو گیا اسکے پھر بھما آدہ دل تاؤں کے گور دیکھیشور (آئند تھو) کو دیکھ پایا۔

پکر مان۔ جو لوگی ایکوت بیٹھی من میں رکھ کر میشور پر ایوں میں سیخت ہوا جھم و اسی کو بھتھے۔ وہ یوگی سب پر کام سے درستا ہوا بھی پر مہ پر رُپ جھم پر میشور میں اسی درستا ہے۔ ہی ارجمن شکھ ہو یا دکھ اپنے سماں دوسروں کو بھی ہوتا ہے یو یوگی اتم درست سے سب پر ایوں میں سم بھاؤ رکھ کر دیکھ لے وہ یوگی پرہیز و تھہ کر شٹ اربعات اور یہاں مان جاتا ہے (لیت ۲۶-۲۷)۔

میتھیا۔ کیٹ۔ اسست تر دوم
منش کرم سوئی اپدیش

زانس اندر کیوں تو نم

انس کھس کش چھم دویش (۱۲)

میتھیے میتھیا چار پکٹ اور بھوٹ۔ لئا یہ سب کھتھا گ دیا۔ ہی اپدیش اپنے من کو بھی کر دیا میشور کے میشور پر ایوں میں کیوں اسی یہ مانقا کو سیستھت ہا مار (ایسے اس قسم) تھی اس کھتھے میں کوک بار دو شش اربعات دلھ کا ہستو ہو گا۔

پکر مان۔ جو بور آٹھا (تھی میں ایادہ) کم میندریوں کو رکھ کر کھاتے۔ اسی تھیا جاری کہتے

ہے اور یہ بھی جان لینا چاہئے کہ اکرم (کرم کر کے نہ کرنا) حکیاے کرم میں اکرم اور اکرم میں کرم پھیلے دیکھ پڑتے ہے وہ پڑش سب منشوں میں دیگرانی اور ہنسی یوگر یکھٹ اور سب کرم مکرنے والا ہے (لیتا ۱۶-۱۸)

شوششو کران ہمسہ گتھہ سوریت
رُونت ووہ ہاری ڈل کند رات
لَاگر رُست ادھیس مُن کرت
تُس نت پُرسن سور گور ناٹھ (۱۲)

جو کوئی میں پیرایک سالس کی لگتی میں شوششو ہے کی نامہ سُرنا
کرنا ہے اور دن رات گرہست آشرم ایجادہ و وہار میں شیخہ اور اشیخہ
کرمہ بندھن کے کسی لگ کے بغیر (پانی میں کمل کی طرح نریل) اور اپنے من
کو دوپتی بھاؤنے سے ہٹا کر (ترنم شانت اسماں کر) رہے۔ اُسی نش کو
بہما آدہ دیوتا دل کے گور و پر بہم پر پہنچو ہر وقت پر سن رہتے ہیں۔

اندری ایس چند ری کاران
کاران ایس ہمیں ہمیہ
شیئے ناران ٹری اتھہ داران
شیئے ماران یم کم ڈھیہ (۱۳)

میں اپنے اندر (دھیان یوگ میں سُخت ہو کر) سب کے پر کاشک
چند رات کو کھو جنی آئی (کس کو کھو جنی آئی) پیرایک کے بیتر سُخت

(لیتا ۵۸) اگرچہ ان نہ کھا کر نہ اسی پر کرم کے دشے چھوٹ
حاویں۔ مگر ان پیشوں کا نہ ارتھات چاہ نہیں چھوٹی۔ پر خود پر کرم
کے ایکوت کا ایچھو ہونے پر دشے اور ان کی چاہ بھی چھوٹ جلتے
ہیں (لیتا ۵۹)

کرم۔ اکرم
ریہ یہ کہ سوئی ارٹن
کا ہے
ریہ لاسہہ او شریم تی منتھر
ریہ یہ گتھہ لگم دھس پرہہ شری

سوئی پر مم شنھن منتھر (۱۴)

جو چھٹے بھول میں (پر ورثہ اور غور نہ رُپ) کوئی سا کرم کرتی رہوں گے
(یہ چھوکر) دھی میری ہر اکرہ سو جاؤ اسٹہ کرن رُپ) پوچھا میں لگتی
ہو۔ جو بھی کھیمرے رسمی میں سے (ارھات۔ میں چھٹو (یتیا۔ ہ
گیان یند روں کے راگ سے) اشیخہ اور اشیخہ داستانیں اپنی ہرول کی
(یہ چھوکر) دھی میرے پر اکرہ سو جاؤ میں منتھر پڑ گیا۔ جو بھی
چھٹے اس لد میرے میں ساریا پر مار تھہ کا بھاؤ دگ جائے گا (یہ چھوکر)
دھی پر پہنچو پر بہم کے کھوچ کرنے کا منتھر بن گیا۔

یہ مان۔ (کرم۔ اکرم اور وکرم کا رسمیہ) کرم کیا ہے ادا کر کی
ہے۔ اس کرم کے دشے میں بڑے بڑے یوں ہیں بھی ہمیت ہو چکھے
ہیں۔ اس لئے میں تھے وہ کرم اور اکرم میلانیں گما جیں کو جان کر تو
سارے سُخت ہو جائے گا۔ کرم کی چھوٹیں ہیں۔ اس شے یہ عالی
لینا چاہیے کہ کرم کیا ہے اور بھا چھے کہ وکرم اور پریت کرم) کیا

ایک ہی بھی (اکتم سروپ پرمیشور) کو گھومنگی آئی ہے پر بہم پرمیشور (بیرکھتے پریگات ہوا) کہ تم ہمی سردویاپک نارانج ہو اور تم نبی ملکھش بن کر ناچھ پھساتے ہو اور تم ہی کال روپ بن کر سب کو مارتے ہو اور ہی پرماتمن یہ نہاری یوگ بیان کے گھٹ چھٹکار لیکے ادھیوت ہیں۔ پرماتمان۔ وہی آگئے ہے۔ وہی سرور ہے۔ دایرو اور چند رہا پر کاش ملکھت ناچھڑا اتیا ہے وہی ہے۔ وہی جل وہی پر زانہ اور بہما ہے، ہی پرماتمن تو ہی پریش اور تو ہی اسٹری ہے۔ تو ہی گماں اخوا گماں ہی ہے تو ہی بوڑھا ہو کر لکڑی کے سہا نے سے چلتا ہے۔ تھنا تو ہی دیرباٹ سروپ پر کھٹ ہو کر سب اور ہنکھ دالا ہو جانلے ہے ہی پرمیشور پرمیشور۔ تو ہی تیل درن پنگ اور ہر سے رنگ کا اور لان آنکھوں والا پاکھی ہے اور میگ و سنت اتیا ہے اور سفتہ سعد رہ پڑی ہے۔ ہی پرمیشور تھوڑے ہی سپورن گوک اپن ہوئی ہیں تو ہی اتادہ پر کرتیوں کا سوائی اور دیاپک روپ سے سب میں دیمان ہے (شیویتا شتر پنچشہد ۶۷۷)

سیند یہت بو گیس تہ او س سو
تہ طیو ھم مھول سو
کلش ٹہنست دوں سو
سوی یئے سوچتے یو کو سہ لل (۱۴)

بھل جال بھی پیں گئی دیاں دیاں دیاں (بیرہم) تھا اور دیاں دیاں میں نے اسی پتاروپی (بیرہم) کو دیکھا۔ وہی جو کانوں میں گھٹل ڈالے ہوئے ہیں جی کہ یہ سالا جگت ہمی ہے تو میں کون اور کہاں کی (ردہ سری) نل آئی۔

پرماتمان۔ یہ امرتہ سروپ پر بہم ہی سامنہ ہے۔ یہ بہم ہی تھے ہے۔ یہ بہم ہی دیں اور یہ بہم ہی بائیں اور یہ یہ بہم ہی تھے

سیند نتھی کرے سنا ن تر تھن
دیکر فیرس نوئی آسے
زشہ چھوئی تہ پر زہ نادن (۱۴)

(ہی ہے وہ سردویاپی پرمیشور) جو ہنستا ہے۔ چھٹکتا ہے۔ انگڑا پیاں یہاں اور کھانستا رہتا ہے اور دن بات (من) کے

تھا اور کسے اور کھلایا ہوا ہے۔ یہ جس بیویں جگت ہے۔ یہ بیوی کا بیوی
بیوی ہی ہے (منڈوک اپنڈ ۲-۲)

دوسراء دھیاۓ

۱۶

اوہنی اکھی اچھر پرم
سوئی ہا مالہ رم وندس منز

سوئی ہا مالہ کنہ چھر کرم پہنڑ رم
اُس س سا س نہ سلیس سون (۱)

ادم ہی ایک اکھشتر کو میں نے پڑھا۔ ہی تات میں کو میں نے
اپنے سو بھاؤ میں پکڑا۔ ہی تات پھر اسی کو میں نے پھر پہنڑ دیا
اور سجادیا۔ میں تو راکھ ہی نصی اور پھر سوتا بن گئی۔

ویا دھیا۔ اوم اس ایک ہی اکھشتر کو میں نے تھے سے جان کر پڑھا
ہی تات اسی ایک اوم کار سوپ پر بیوی کو میں نے ادھیار فی در قی
سے اپنے پر اکرنا سو بھاؤ انہ کروں میں دھارن کر کے پکڑا۔ ہی تات
پھر اسی ایک اوم کار کو میں نے لشچیے لوروک در ڈھد کر کے بارم بار ویک
ابھیاں روپی پھر پہنڑ دیا اور پیٹے تاکر کے سو بھایاں کیا۔ میں تو
راکھ ہی نصی۔ اسی ایک اوم کار کے پہنچ ماتر کرنے پر راکھ سے بدل
کر سوتا بن گئی۔

پرمان۔ (ادم) یہ پر ماتما پرتو کے ادھیکاریں ورنہ ہونے کے

کارن نین ماڑوں سے یکھت ادم کا ہے اکار ۳ اکار۔
اکار۔ یہ نین ماڑائیں ہی نین پاد ہیں اور ماڑوں سے رہت ادم کا
کا چھوٹھا پا ہے۔ ادم کا کی یہی ماڑا اکار ہی سا سے نجگت کے نام
سے دیا ہے ہونے کے کارن اور پہلا پاد ہونے کے کارن جاگرت کی
بھاننے سخنول جگت روپ شریرو دلا ویشا ناک پہلا پا ہے۔ ادم کا
کی دوسری ماڑا اکار کیلکیشٹ ارتھات اکھ سے سریشٹ ہونے کے کارن
سین کی بھاننے سوکشم جگت روپ شریرو دلا۔ تھس ناک دوسری پاد
ہے۔ اوم کار کی تیسری ماڑا اکار ہی میں کرنے والا ارتھات جاننے
میں آئے والا ہونے کے کارن اور ویلن کرنے والا ہونے کے کارن سو شپنی
کی بھاننے کارن میں ویلن جگت ہی جس کا شریرو ہے۔ پر اگر ناک تیسرا
پاد ہے اسی پر کار ماڑا سے رہت ادم کار ہی وہ مار میں نہ آئے
وہلا پر پنج سے اتیت۔ کلان مٹے اور پوت پورن بیوی کا چھوٹھا پا ہے
جو اس پر کار تتو سے جان لیتا ہے وہ لشچیے کر کے اپنے ہی آنم دوارا
اُس پر بیوی پر ماتا ہیں ہی مل جاتا ہے (مانڈوک اپنڈ منتر ۸/۱۲)

۱۹

سوچن نہ سالس پرنس نہ رمس
سیند سویس مہ لالہ چھو پنھو ہی دا کھر
اندرم ٹکڑ کار ریت تہ وو فہ
ٹریت تہ دیو تمس تھی چاک (۴)

میں نے اپنے اپ کو ایک سوئی کے نوک جتنا بھی کسی ساعت
بال بھر پچھا نہ چھوڑا۔ وہی یوگ کا مس جھنڈل کو اپنے ہی وکیہ ہیں

(ایسا کرنے پر) میں نے اپنے اندر کا اندر ہکار پکڑ کر اُتارا (درکاٹ کر) جب ہی میں مل پر کاش کے سخنان پر پہنچ گئی۔ وہیں پر سانحہ سانحہ ٹکڑے کر دئے۔

ویا یہی۔ یا ہر دن سو سی اور سان سے ساھ ساھ پرے کو ادم کار ہی پڑھاتی رہی۔ سمجھو کر یہ میں پر ما تم روپ شو اہم شد میں ہی یہی لیں ہو کر آپ ہی پڑھنا بھی ہے اور آپ ہی سننا بھی ہے اس طرح کی سادھنا کرتے کرتے میں نے اس سو اہم پر میں سے اہم کو گلایا۔ ارتحات سو+ اہم میں سے اہم کل کر شو۔ پر بہم ہی نج رہا۔ تب ہی یہی میں مل پر کاش کے سختاں مکتی دام پر بہنچ گئی۔

آئندگان آسیکلیتوں کے اندر ہٹکار کو پکڑ کر ارتحافات یعنی طرح سے چان کر۔ اگلیں اندر ہٹکار کے مدد سے اس تارا اور پھر اگلے میدریوں کے راست ائمک سمجھاؤں کو کاٹ کر دیں پر سانحہ سانہ مکمل طریقے کر کے پھنس کر ڈالا۔

بسمیالہ۔۔۔ بن بن وہ لوگوں اتنیں ہیں جنہیں میدر لے لے کر ہر تھک نہیں۔

پر تھک ستابے جو ان کا اڈے اور نے ہر جانا سو بھاٹے اسے اچھی طرح جان کر اور آنکا ساروپ وس سے الگ جان کر دیسر پر ش کسی فسم کا شوک نہیں کرتا رکھ پا شد ۱۴۳۷

سہیں دھرم من ادم کا زیر نو وم
پائے پیران پلے بیرونی
سوارم پدش آہم گو لم
پلے بیرونی دا خشم، بکھاشتے بھالا

بیک ہر دن قلت اپنے من کو ادم کا رہی پر طھاتی رہی۔ آپ ہی پر طھاتا بھی ہے اور آپ ہی سنتا بھی ہے سو اس پر میں سے اہم کو گللا دیا۔

پر کاش کے سخان پر پہنچ گئی۔
میرے بیتھاں تھوڑا پر کاش میں دیکھ پڑھلت ہوا اور مجھے اپنی ذات ارتھات اپنا مرضی پر کٹ ہو گیا اور پھر میں نے پہنچا کھیا ہوا آئے پر کاش باہر چھٹک دیا۔ اندر میں نے اپنے آپ کو بھسٹھ کر دیا۔ ایسا کرنے پر یوگ کی پچھہ بھومنکا دل کو طے کر کے پھر ساتھ پایا اور پیم لابھ جان کر اسے پکڑ لے ہی رکھا۔
بھی پھر میں الی پر کاش کے سخان گھٹکا دام پر پہنچ گئی۔

سالنوں کی یکھنی سے اوم کار کے جب کا اچارن کرنے لگی۔ ایسا کرنے پر میرے بیتھاں تھوڑا پر کاش میں دیکھ پڑھلت ہوا اور مجھے اپنی ذات ارتھات اپنا مرضی پر کٹ ہو گیا اور پھر میں نے پہنچا کھیا ہوا آئے پر کاش باہر چھٹک دیا۔ اندر میں نے اپنے آپ کو بھسٹھ کر دیکھ پایا اور پیم لابھ جان کر اسے پکڑ لے ہی رکھا۔
پہنچاں۔ اپنے شرپ کو پہنچ کی ارتقی اور ادم کار کو اوپر کی ارنی یا کر دھیان کے دوارا۔ فرستہ منصب کرتے رہنے سے سادھک پہنچی ہوئی اگر کی بھانسٹھ ہر دی میں سخت پرم دیو پر میشور کو پیکھے۔ تلوں میں تیل دی ہی میں گھی۔ سوتول میں میل اور ارینوں میں اگنی۔ جس پر کار پہنچی رہتی ہے اسی پر کار وہ پر ماہا پانے پر دے میں چھپا ہوا ہے جو کوئی سادھاب اس کو ستر کے دوارا تمیم دھوپ تپ سے دیکھنا رہتا ہے۔ اسی کے دوارا وہ پر میشور گر گئی کیا جاتا ہے (شوپتا شتر اپنیشاد ۱۵/۱)

بھیوں تل ماہیں تل پے بھیوں چمکاں میں آگ

تیرا مالک تجھ میں جاں سکے تو جاگ (کبیر)

ادم کار پلہ لیہ اونم
وہی کر قنم پین پیان
شہ و تر تراوٹ ترست مارگر و نم
تپلہ تل پہ داڑس پر کاشس نہان (۵)
جب کر میں نے ادم کار کو اپنے سادھے کیا ایسا کر اپنے آپ کو بھسٹھ کر دیا۔ چھڑا ستر طے کر کے سست مارگ پر کپڑا تب ہی میں میل

پانس لگت روڈک مہہ تھہ
مہہ تھہہ تھاندان نوستم دھوہ
پانس منزہ ملہ دیو ٹھک مہہ تھہ
رہہ تھہہ تھ پانس دیو تمہر ٹھوہ (۱۶)
میرے سے تم اپنے آگے (مایا ویپ) پر دہ لگا کر چھپ کر رہ گئے مجھے
تمہارے کو ڈھونڈتھے بہت دل بیت تھے جب کہ پھر میں نے اپنے ہی آپ
میں تم کو دیکھ پایا۔ پھر میں نے تمہارے کو اور اپنے آپ کو مٹا بہت
ویکھ ٹھوں دیا۔

ویکھیا۔ ہی پر میشور تم اپنے آگے مایا جو پی بھرم کا پر دہ لگا کر
میرے سے گستاخات چھپ کر دے گئے۔ مجھے تمہارے کو ڈھونڈتھے
بہت سا سے نہیں گئے دل بیت تھے جب کہ پھر میں نے اپنے ہی آپ
میں تمہارے کو دیکھ پایا۔ تب پھر میں نے تمہارے کو اور اپنے آپ کو
مشابھت دیے کر چھانٹ اور ٹھوں دیا اور ارتھات دھوپ اور چھایا کی
چھانٹھ تھا میں نے کو اور اپنے آپ کو دیکھ پایا)

و بند کر دیا۔ ریکام کا پیٹا ابھو ہو جلتے ہے پھر بھی سشیش شوہی تکل ایسا۔ اپنے یعنی دش دشائیں (ایک دشندہ ہوا من) باقی پھر ادھ سین ارتحات شبدہ پسروش روپ۔ رس اور گند کام۔ کرو دھ۔ تو بھ اور حسوہ ۲۰

پھر مالن (دیش بند پت دھاونا) تاجی چکر۔ ہر دھتے مکل آدھ تری رہے پستروں والا دیش ہے (اور آکاش شوہی یا چند رہ۔ آدھ کوئی بھی دیونا یا کوئی مورتی۔ تھا کوئی بھی پدار تھ بہر کی دیش ہے۔ ان میں سے کسی ریک دیش میں چت کی ورنہ کو رکانے کا نام دھارنا ہے (سی میں ایکاگر ہو جانا دھیان ہے (پانچھل یوگ درشن و جو تر پاد ۱-۲) دش دش سے اٹھی پریل کر دھ کی سگ سنگتی شیتل سادھو کی تھن اب رئے بھاگ یہ سینا سب ہوہ کی کئے کبیر۔ سمجھائے ان سے جو کوئی باحی بھوہ ساگر تر جائے (کبیر)

جا کارن جگ ڈھونڈھیا۔ سو تو پر درے مالن پرانا۔ پر درے دیا پھر کام کا تان سے شوہی ناہیہ جھوٹیں پیٹیں پوتیں یوں مالک لھٹ مانہیہ موڑ کھ لوگ نہ جانیے باہر ڈھونڈن جاہرہ (کبیر)

رلش ایس دش دلش تیلست

تیلست روٹم شن ادھ دا د

بشوی ڈیوٹم شایہ شایہ بیلست

شیہ تہ ترہ تریکس تہ بشوی دراود (۷)

میں دش دلشیوں کو (تیلست) اچھی طرح سے جان کر اپنے دلش بدھیں ہوئی اور (الت سے دور) بھاگ کر شدہ اور دیلو کو کاف لیا۔ بتو ہی تو ہر ایک شیتے میں ملا ہوا دیکھ بایا۔ چھوڑنے کو بند کر دیا۔ پھر بھی خشیش شوہی تکل آیا۔ دیا کھیا۔ میں دش دلش ارتحات دش اسٹر آنک راگ روپی دشاوں کو (تیلست) میں پھیپھا ہو اتیل جیسا جان کر ارتحات اچھی طرح سے آن کے سروپ اور سو بھاول کو جان کو۔ تب (ہی پھر میں (دلش ایس) سما دھ روپ دلش میں جنہ ارتحات چت کے دھیان وھا ناہم کر لئے ایکاگر تاہرہ تھے میں اسکی پھر (ادھ بھت راگ آنک دشاوں کے سنگ سے) دور بھاگ کر (ایسا سارا جنم اپسے ہی) شستہ دور والوں میں لذار لذار کر کا فی رہی رالا کرنے پر) پر ایک شیتے میں شوہی ملا ہوا جان پایا۔ پشیات اور گھست ازیز آنک راگ روپی دشاوں میں سے ایک من کے سروتا دشندہ ہو گئے پر ناچی پیچھے اور نین ارتحات نو پشیہ روپی ازیز آنک دشاوں

سیند - ملی وندہ ز دلم۔ جگر مو رم
ریلپہ تل ناد درام
پلپہ دل ترا و مس نتی را

یہنے اپنے سو بھاول میں سے (اٹھتے کر بولنے کے بیتھ پر اکڑ سے بندھے ہوئے دشیہ آسکنیوں کے) سب میں کو جلا دیا اور اپنے جگر کو ارتحات دل کے سب کامنار و پی خایمیشات کو) نار دالا۔ تب ہی پھر میرا

پر ماد سے۔ اقتوالکھن رہت تپ سے بھی پر اپت نہیں کیا جا سکتا۔ کہن تو
جو بُدھیاں سادھک اُبایوں کے دواڑا پریت کرتا ہے اُس کا یہ آتما برہم دام
میں پر دشٹ ہو جاتا ہے (منڈوک اپنڈ ۳۴۷)

سیند لوکہ نارہ یلہ نولہ للہ نووہ
مرنے موریں تر رُوزِ سارہ زرئے
رنگہ رزہ زاچی کیاہ نہ رنگ ہووہ
بہ دُن شُرلم فتہ کیاہ سستہ کرے ۲۶۱

جب کہ میں اُسیں کو ریم روپی اُگنی سے گودی میں ہلانی رہی۔ میں
تومرنے کے بغیر زندہ ہی مرنگی پھر میں ذرا بھر بھی درہی (اس سے پہلے
اپنی بیٹے رنگ ذات ہوئے پر بھی میں نے کیا کی رنگ نہ دکھائے۔ جبکہ
میرے سے میں (میرا) کہنا ہرث کیا ابہ (یہ پر کرنی) کیا کرے گی۔
ویا کھیا۔ جب کہ میں اپنے پیترے قحت پر برہم (امنر آتما) کو
پریم روپی اُگنی سے اپنے ہر دُسے روپی گودی میں اوم اوم کے نشید
کہہ کہہ کر پریم اور لالی کرکے ہلانی رہی۔ میں تومرنے کے بغیر زندہ ہی
اُس کے پریم میں مرنگی (اسی طرح سے مرنے پر) پھر میں ذرا بھر ارتحات
اُو (۳۳۳) جتنا بھی نہ رہی یعنی دوست بھاؤ اور میں پن کا ناٹھ
ہو کر اُسی برہم میں لیں ہو گئی اس سے ہلے جنم و جنم ترویں میں مجھے یہ رنگ
ذرا اتمہ مردپ و نانی نے اس سمار کے آوانگ اور پر کرنے میاں میں
پڑ کر میں نے کیسے کیسے ناق و رنگ نہ دکھائے جبکہ اب میرے سے میں
(میرا) یہ سب کچھ کہنا ہٹ گیا۔ اب یہ پر کرنے بخشنے کیا کرے کی ارتحات

زھانڈان لو سسن پانی پانس
شھمہت گیاں دوت نہ کو نشر
لکھ کر مس داڑس مئے خانس

26 میں آپہ ہی اپنے آپ کو ڈھونڈتے ڈھونڈتے اُر گئی اس پھیسے
ہوئے گیاں تک کوئی دکونش (چھوٹا نہیں ہے) جب کہ میں نے اس کو
(امنر آتما کو) اپنے ساتھ لے گیا۔ تب ہی میں دیخانس (سرگار میں
بیخ گئی۔ یہاں پر جام پھرے پھرے پڑے ہیں پر انہیں کوئی پیتا نہیں۔
ویا کھیا۔ میں ساری عمر آپہ ہی اپنے آپ کو ڈھونڈتے ڈھونڈتے
ارتحات پتیا کرتے کرتے تھا کر ہار گئی۔ اس ادھیاتم روپ پھیسے
ہوئے گفت گیاں کے جانے تک کوئی بھی چھوٹا (یا) ارتحات بلہ میں
مُور کھو چکیا جب کہ میں نے عمر بھر نہ فرست دھیان دواڑا پتیا کرتے
کرتے پریشور امنر آتما کو اپنے ساتھ پریم میا لے کیا تب ہی پھر
میں (سرگار) ارتحات امرت دام میں بیخ گئی۔ یہاں پر تو گیاں ہو دیا
امرت کے جام بھرے پڑے ہیں مگر انہیں کوئی پیتا ہی نہیں (ارتحات
اس ادھیاتم مارگ کے جانشی کی طرف کوئی اپنا اُرخ ہی نہیں کرتا۔
پرمان۔ یہ آتما میں مش کے دواڑا پر اپت نہیں کی جا سکتا۔ تھا

یہ میرا لکھنے پر جب میں کچھ رہا ہی نہیں گیا اب یہ پر کرتی کہاں سے اور کہاں کا کرم بندھن لا کر اپن کرے گی) پرمان۔ جس سخت میں پرمیشور کو بھلی بھانٹہ جانے والے مہا پرش کے انہوں میں زیں۔ میرا یہ دوست بھاؤ کل کر میشور ان پرانی پرستم سروپ ہی ہو گئے۔ اس سخت میں ایکتا کا فرستراکھشات کا رکنے والے مہا پرش کے لئے کون سا مودہ اور کون سا شوک رہ جانےکے وہ تو شوک مودہ سے رہت پرہ پورن آنند سروپ ہو جاتا ہے (ریش اپنیش کے) میں میرا لکھنے کا پرمان ادھیا یے ۳۔ دیکھ ۲۰ کے پرمان میں پڑھیں۔

نومیاں اصلًا کمال این است نوبس
نور و گم شو وصال این است نوبس (مشنی ہولانا روم)

اندر است فیر شھونڈم
پونز زنگن کرتم سست
دھیانہ کن دئے نگہ کیوں زونم

زنگ کو سنگس میلست کت ۲۸ (۱۱)

وہ پرمیشور تو میرے ہی اندر سخت ہو کر اور میں اُس کو باہر ادھر ادھر دھونڈھتی رہی جب کہ (ابھیاس روپی پرمان) واپس نے میرے آخر اچھا کے زنگوں کو میرے میں لٹلی کر دی (ارتحات یوگ بندھی ہو گئی) پھر میں نے دھیان سے سارے جگت میں کیوں اُسی پرمیشور کو سخت ہو کر جان یا (ایسا انہوں ہو جائے پر) یہ سارے

سنار کے پر پنچ کارنگ اُس پہنہ دلوکے سنگ میں مل کر نئے ہو گیا۔ پرمان۔ جن کا آنما لگ جھٹت ہو گیا۔ اُس کی دریافت ستم ہو جاتی ہے اور اُس سے سرو ترہ ایسا دیکھ پڑتے لگتا ہے کہ میں سب پر انیوں میں ہوں اور سب پڑائی مجھ میں ہیں (گیتا ۲۹)

سیندھ صکر زن مل شتم منش

ادہ مہہ بیم زنس زان

سو ملے طیو ٹھم نشہ پانس

سورو دی سوئی لئے بو تو کنہہ (۱۰)

جس دفت کر میرے من روپی ششی کے اوپر سے سب (کا منا۔ آدہ و اسناؤں کا) میں ہر ٹیکا قلب ہی پھر میں نے زناروں انفتر آنٹا کی پیچان پائی جب کر میں نے اُس کو اپنے ہی پاس دیکھ پایا۔

(سماکھشات کا رہنے پر گیات ہوا۔ کہ) سب کچھ تو رو ہے اور میں کچھ بھی نہیں (ارتحات یہ دوست بھاؤ میں تو۔ یہ وہ کچھ بھی نہیں)

پرمان۔ من کا جو میل پے یہ پر کرتہ کے سست۔ درج اور قم گنگوں کے دکار اور ذھر میں۔ پر ش کے نہیں۔ پر ش نوں نہ ہے اور تر گنہ شہ پر کرتی اُس پر ش کا درپن دشیشہ ہے جب پر ش کے بندھی کو نہیں ساتاک گان پر اپت ہو جاتا ہے تب یہ پر ش اُس درپن میں اپنا آتم سروپ دیکھتا ہے (ہبھارت شانہ پر ب ۲۹)

آئینہ سکندر جام جم است بنگر۔ میکھ
تباہ تو عصر دار داعوال ملک دارا۔ (دیوان حافظ)

سیند مل بو دریس لو لئے
شہزادان لو ستم دن کیہو رات
وچھم نظر پنہہ گرے
سوئی مہر مس نا خضرت ساعت (۱۳)

بیان میں یہ بیج کے رسیوں سے بندھی ہوئی (مست دیوانی بن کر) بیکھ پر مانغا کا
کھوج کرتے کرتے (زندگی کے) سارے دن اسی طرح ساری راتیں بیت گئیں
جس وقت کہ پھر بیان نے اپنے ہی (شریروپی) مگر میں پنڈت کو ارتھات
وہ سرہم گیا نی ستم درشت آتا کو دیکھ دیا۔ تو اسی وقت کو میانے پر کرتی
سے چھٹکارا پانے کا شیخ تکہتر اور شیخ ہبوبت پکڑا۔

پر مان۔ جب یوگی ہمال دیکھ کے سماں اپنے پر کاش مئے آتم تو
کے دوار پر ہم تنو کو ارتھات پنڈت کو اپنے گھر میں (دیکھ لیتا ہے اس
مئے دہ اینہا۔ تیچل سب تنو دست دشده پر ہم دیو پر اتما کو
جان کر سب پر کرتے بندھنوں سے سدا کے لئے چھوٹ جاتا ہے (شیخ
شتر اپنہدہ) (۱۴)

دُوش دفت سحر از عصمه خاتم دادند اندران ہللت بیٹ آب جیا تم دادند
چہ مبارک سحری با تو وچہ فرخندہ شیخی آن بیٹ قدر کہ ایں تازہ بر اتم دادند
در قم۔ وہ کل کی رات اور صبح کا وقت کیا ہی مبارک ساعت تھا
جب کہ بچھے عضد سے (ارتھات) اہنکار تنو اہم بھاؤ سے (محفظ کارا دیا گیا
وہ وہ سنار روپی اندر پھری رات کے اگیاں میں بچھے گین بڑپی۔ آب
چیات ارتھات بیچن مگت پروری عطا کر دی گئی

(دیوان حافظ فارسی)

لکی شوری والیہ زہبیہ
ادھیاے ۲

وچھان تہ یہ چھس سا بسی اندر
وچھم پر زلان سارسی منظر
بوزت تہ روزت وچھ ترسی
گھرہ چھوی شندوی یہ کسہ مل (۱۲)

میں تو سارے بہمانہ اور سب کے اندر (امسی آخر سرود پ
پر میشور کو) دیکھ رہی ہوں اور اسی آخر سرود پ پر میشور کو سب کے
پیشتر چمکتا ہوا دیکھا یہ میرے دا کبھیست ہی مان کر اور پھر شانسی
سے سو وچار کرنے میں رہ کر (سادھنا کرنے کرتے) اُس ہری ہر (آخر
سرود پ پر میشور کو اپنے ہیا بیت) کھوچ کر کے دیکھ یہ میرا شریر (اور
یہ سارا بہمانہ) اسی کا گھر ہے میں (دوسری) کون اور کہاں کی تل آئی
پر مان۔ ہی ارجن جل میں رس میں ہوں۔ چند ر۔ سو یہ کی پریجا
میں ہوں۔ سب ویدوں میں پراؤ ارتھات اوم کار میں ہوں۔ آکا ش
میں شبد میں ہوں اور سب پر شوں کا پُرشار تھیں ہوں۔ پر تھوڑی
میں شگندھی اور اگنی کا تیج میں ہوں سب پر ایوں کی بھون شکتی اور
پیسوں کا تپ میں ہوں۔ ہی پار تھ جوہ کو سب پر ایوں کا سناش بیج
سمجھ بڑھاںوں کی بڑھی اور پیسوں کا تیج بھی میں ہی ہوں (التفات
یہ ہی سب میں چمکتا ہوں۔ گیتا ۱۰/۸)

سیند چھوئی کوئے چھوئی نا کوئے
وچھم اور یور نا کوئے
دیہ پنکل تے مول نا کوئے
چھوئی شہزادن تہ گارک نا کوئے (۱۵)

ادھر تھے پائے یہ رہ تھے پائے
پت دانے روزہ تھے زانہ
پائے گفت تھے پائے گیا تھے
پائے پاسن مود تھے زانہ (۱۴)

ادھر سے بھی وہ آپ ہیا ہے اور ادھر سے بھی وہ آپ ہیا ہے
بھی بھی وہ پچھے ہٹ کر ہیں رہے گا۔ آپ ہیا وہ گفت بھی ہے اور آپ
ہیا وہ گیا نی بھی ہے اور آپ ہیا وہ اپنے آپ کو تمی بھی ہی نہیں مرا۔
ویاکھیا۔ ادھر سے بھی وہی نرا کار اونکھت سروپ سب کا آدھ کارن

پر بھم آپ ہیا ہے اور ادھر سے بھی دھی یہ سا مارشمان جگت براٹ
سروپ اپر بسم آپ ہیا ہے کبھی بھی وہ من و میلو آدھ بیگرگت کرنے والے
دیوتاوں سے پچھے ہیں رہے گا۔ آپ ہیا وہ سب پرانیوں میں اور
سائے تر جوں میں گفت ہو کر چھپا۔ ہوا ہے اور آپ ہیا وہ گیا فی ارتحات
اپنے آپ کو جلنے والے۔ آپ ہی وہ سویم اپنے آپ کو بھی بھی نہیں مل
پر بھا۔ وے پریشور اچل اور ایک ہیں اور مرن سے بھی ادھک
تیگرگت میخت سبکے آد کارن۔ گیان سروپ سب کو جاننے والا۔ اس
پریشور کو بیندر آدھ دیونا پڑی۔ گن پورن رُوپ سے ہیں جان پانے کے
بند بسم دسرے دوڑنے والوں کو سویم سخت رہتے ہوئے ہی ایک کرن
کر جانے ہیں ان ہی ستائشتر سے دیلو اد دیوتا۔ جل وہ شا۔ پر کاش
آد کرم کرنے میں سُرخہ ہوتے ہیں۔ وے پر ماننا چلتے ہیں۔ وے پر ماننا
ہیں چلتے۔ وے دوسرے بھی دور ہیں۔ وے نزدیک بھی ہیں۔ وے اس
سائے جگت کے میز پر تھے پورن ہیں اور وے اس سائے جگت کے باہر

وہ کہیں ہے اور کہیں نہیں ہے۔ میں نے اس کو (اپنے بغیر) ادھر
اور ادھر کہیں بھی نہیں دھونڈا۔ اس پر ماننا کے پھل کا مولیٰ کہیں بھی نہیں
ہے اور اس کا دھونڈھنا اور کھوچ کرنا (اپنے بغیر) کہیں بھی نہیں ہے۔
ویاکھیا۔ یہ آنما (پر بسم پریشور) کسی کسی ہما پُرش یوگی کے

دیکھنے میں آتا ہے اور یہ آنما۔ ستاری مُورکہ منشوں کے دیکھنے اور جاننے
میں آتا ہے نہیں۔ میں نے اس کو ادھر اور ادھر اپنے بغیر کہیں بھی نہیں
دھونڈا۔ اس پر مانم روپ آتم تو کے پھل کا مولیٰ اور تو لا کہیں اور کسی
کے پاس بھی نہیں ہے اور اس آنما کا دھونڈھنا اور کھوچ کرنا اپنے سے باہر
کہیں بھی نہیں ہے۔

پر بھا۔ جو آتم تتو بہتوں کو تشنہ کرنے بھی نہیں ملنا اور جس
کو بہت لوگ میں کر بھی سمجھ نہیں سکتے یہ سے اس حیلہ تو طھ آتم تتو
کا ورق کرنے والا ہما پُرش اسچریہ منہ سے پر بسم دلی ہے اور اس
آتم تتو کا پریشت کرنے والا بھی بڑا شش کوئی ایک آدھ ہی ہوتا ہے
اور اس آتم تتو کو بھی بھانتے جانے والے گروکے دوارا شیکھشا پریشت
کرنے والا آتم تتو کا گیا بھی اسچریہ منہ سے۔ پرم دربیہ سے۔ سادھارن
منش کے دوارا بتلائے جلتے پر اور اس کے اوسارہت پر کارے چتن
کئے جانے پر یہ آتم تتو۔ ایکی طرح سمجھ نہیں آسکتا۔ کسی دوسرے
تتو گیانی پُرش کے دوارا اُپلیش کئے جانے کے بغیر اس دشمنے میں منش
کا پریشور نہیں ہوتا کیوں کہ یہ آنما سوکشم وستو سے بھی ادھک
سوکشم ہے۔ اس لئے ترگ سے ایت بے (لکھ پیش شد ۱۴)

بھی ہیں (دیش اپنٹڈ ۲۴-۵)

سیند اورہ تے پانے بیورہ تے پانے
پانے پانس پچھوئے میلان
پر تھم اثرس نہ مولیہ داری ۳۶
سوئی ہا مالہ نہی آشچر زان (۱۶)

ادھر سے بھی ہی دیکھا کار ادھر سروپ آپ ہی پے اور ادھر سے بھی ہے
سارا درشمہان جگت آپ ہی ہے آپ ہی دھ (سب میں سرحت چوکر) ۱ پے
آپ کو سلٹ میں آتا ہی نہیں۔ اس پر ماٹا کے آد-انت اور ملھ دچار کرنے
میں بھی کی ایک رقی بھی ساہنیں ملتی۔ ہی تات اسی کو تم ایک اشچر مئے ادھوت
میا جان۔

پر مان۔ شری بھگوان کہتے ہیں میں نے اپنے ادھر سروپ سے اس
سائے جگت کو چھیلایا ہے۔ چھوٹ میں سب پرانی ہیں۔ پرتو میں اُن میں نہیں
ہوں اور بھوٹ میں یہ سب پرانی بھی نہیں ہیں۔ دیکھو یہ کیسی میری ایشوری
کرنی اور یوگ سامر تھے۔ سب پرانیوں کا اُنٹن کرنے والا میرا آئنا
اور اُن کے بیٹر سخت ہو کر اور اُن کا پان کر کے بھی پھر اُن میں نہیں ہوں
سر و ترہ ہیئے والی ماں دایو جس پر کار سر دا آکا ش میں کہتی ہے۔
اسی پر کار سب پرانیوں کو مجھ میں سمجھ (لیتا ۹/۹)

سیند پانے آڈ پانس سیتی
پانے کوڑن پنن دچار

پانے پلٹن یان پچھنا دلن
پانے پلٹن پلٹن پان (۱۸)

آپ ہی اپنے آپ کے ساتھ آیا۔ آپ ہی اپنے آپ کا دچار کیا۔
آپ ہی اپنے آپ کی پرشن ارتحات بڑھائی جتنا لگا۔ آپ ہی
اپنے آپ کو گپت کر گیا۔

دیا کھپا۔ دیکھو یہ پر بھم کا اشچر مئے ادھوت میا۔ آپ ہی
وہ پر بھم جھوٹا تم دیکھ سے پسے آپ کو اپنی ہی تو گلنا تک میا۔ آپ کے
دش میں کر کے جم دھارن کر کے آیا اور پھر ہیاں سشار میں آپ ہی اپنی
بڑھائی جتنا لگا۔ ارتحات ہم تم کر کے امکار سے جس کے دوارا اپنے
میں آرہوت کئے ہوئی دیدیاں اور ادیمان گھوں سے اپنے کو گھست مان
کر منش ہم پیش۔ ایسا ماننے کے میں بڑا کولیں ہوں میرے برابر دسر
کوں ہے وغیرہ وغیرہ جب کبھی پھرا پسے ہی دیکھ اچھیا نے اپنے آپ کا
دچار کرنے لگا کہ میں کوں ہوں۔ یہ جگت کس پر کار سے اُپن ہوا۔ اس کا
کرتا کوں کے اس کا اپادان کارن کیا ہے۔ اس طرح کا ادھیا تم دچار
کرنے کرتے اپنے نہ سروپ کے جان لیئے پر آپ ہی اپنے تو سروپ میں
اپنے کو گپت کر کے اُسی میں ساگیا۔

لشیوک بیدان کڈم پانس ۳۶

مہن کلہ روزم شیدھ نہیں مو ش
دری سینکس پانی یا لسی
ادہ بکھر لکھ پھل لیلہ پیتو شس (۱۹)

میں نے (اپنے زندگی کے دنوں میں) اپنے آپ کو شوٹیا کا میدان کاٹ کر نکال ڈالا ایسا کہ مجھ تل کو نہ تو کوئی یہ عی نہ تو کوئی ہوش ہی نہ۔ آپ ہی اپنے آپ میں جاگ اٹھی۔ پھر معلوم کس طبیب میں سے مجھ تل کے بیٹر (امرت روپی) کل کا پھول بھل آیا۔

ویاکھیا۔ میں نے پرمانا کی سادھنا کرنے کرنے لشونیہ روپی پرہیڑیا کی در قبیلے (سادھن اوسما کا وقت ارجحات) اپنی عمر گلزار دی۔ ایسا کہ مجھ تل کو پنیسا کرتے کرتے سنا روپی نہ نہ کوئی یہ عی نہ تو کوئی ہوش ہی رہا۔ اس طرح کی سادھنا کرتے مجھے بھر اپنے آپ ہی اور پار روپ ایگیان اندھکار کے نیند سے گیان روپی جھاگ کھل آئی۔ پھر معلوم مجھ تل کے بیتر کس کل سرکے طبیب میں سے نریف گیان امرت روپی کل کا پھول بھل آیا (اس داکیہ کا پرمان گیتا $\frac{۱}{۱۲} / \frac{۱}{۱۲}$ اگلے داکیہ کے پرمان میں دیا ہوا ہے۔ پڑھیں)۔

اوپریکھت را و پرہیڑہ را و اون رو دوم
و اکیر کو زا و تکھ اتھہ ایس بکوہ سرہ
و دسرد رہنات اسان تھے گنداں سہزی پر دوم

میں ۳۷ دیسے کو رام پاں سرہ (۲۰)
کھونے میں سے میرا (ربا) ناون کھو گیا۔ یہ کھو کر اس بجھہ سرکے بیتر دھوپی ہوئی میں اپنے اتھہ آئی۔ پھر سستے اور کھیلے آتا کو

پر اپت کیا اور ہٹنے کے بغیر اپنے آپ ہی جان کر پرکاشت کر ڈالا۔ ویاکھیا۔ جب کہ میرے اپنے کرلوں میں میسا ہوا ایگیان روپی کھو والے

میں اپنے میں الی کھوئی تھے اپنے کھونے کا بھی تھی

لیا لکھنے کو کھو کر کھونتے تھے لیوں میں بخوبہ سرکے زیارت آئیں

آسانی سے سپت آتا۔ ویاکھیا۔ اس کی کہیں لیے بسرا دو

لے ڈالا۔ اسی قات آتا۔ اسی قات میں اس کو خداوند نے ہے اس کا

دہلے دکار دل میں سے یہ میرا (بیٹا بھاری سماڑی ہوں) اپنے اہنگار توت (ایگیان کا کارن) کھو کر نشٹ ہو گیا۔ یہ کھو کر ہی اس نسنا سرمدار کے بیتر دھوپی ہوئی میں آپ ہی اپنے کو افہم آئی۔ تب پھر میں نے سستے ہستے اور کھیلے کھیلنے اپنے اندر رکھت آتا کو پر اپت کیا اور کھو کے ہٹنے کے بغیر ہی اپنے ہی گیان پر کاش سے پرمار تھہ تو تو کو جان کر پر کاشت کر ڈالا۔

پرمان۔ جن کے اپنے کرلوں کا ایگیان جس سے کر دہ نہیں ہوتے ہیں۔ آتم دھوپیک روپیک گیان سے لشٹ ہو جانپے ان کے لئے ان ہی کا دہ اپنایا گیان پرمار تھہ تو تو کو سویریکے سان پر کاشت کر دیتا ہے۔ ادم اس پرمار تھہ تو تو میں ہی جن کی یہ عی رنگی رنگی یا قہے دہیں پر جن کا اپنے کرلوں رم جاتا ہے اور جو تو پرایں ہو جانے ہیں ان کے پاپ گیان سے بالکل دھوٹے جلتے ہیں اور وہ پھر جنم نہیں لیتے (گیتا $\frac{۱}{۱۲} / \frac{۱}{۱۲}$)

دلے دکار دل میں سے یہ میرا (بیٹا بھاری سماں بھول رہا) اپنکا تتو (اگان کا کارن) کھو کر نشط ہو گیا۔ یہ کھو کر ہی اس سنار سمند کے بیتر دوہی ہوئی میں آپ ہی اپنے کو افذا آئی۔ تب پھر میں نے سنتے سنتے اور کھیلے کھیلنے اپنے اندر سخت آہما کو پلاپت کیا اور کسی کے لئے کے بغیر ہی اپنے ہی گیان پر کاش سے پرمار تھوڑتو کو چیان کر پر کاشت کر ڈالا۔

پرمان۔ جن کے انہ کر کوں کا ایگان جس سے کردہ ہوہت ہوتے ہیں۔ آتم وہیک روپ گیان سے لشت ہو جانہے ان کے لئے ان ہی کا دہ اپنا ایگان پرمار تھوڑتو کو سویہ کے سماں پر کاشت کر دیتا ہے۔ اور اس پرمار تھوڑتو میں ہی جن کی یہدی رنگی جانی ہے وہیں پر جن کا انتہ کرن رم جانہے اور جو تھوڑیاں ہو جانے ہیں ان کے پار گیان سے بالکل دھوٹے جلتے ہیں اور وہ پھر جنم نہیں لیتے (گیتا ۱۶/۱۶)

لتن ہند مان لاریوم وتن
اکھی ہادنم ایکھی و تھم
پیم ہم بوزن ہم کوہن ملن
لله بوز شیقن کوئی کتھم (۲۱)

میرے لاٹوں کا مانس سڑکوں میں پھٹ گیا۔ ایک ہی نے اسیں ایک ہی کا مارگ دکھایا جو بھی ایسا ہی اس لیں گے وہ دیوں نے کیوش ہے تو جائیدا گے۔ ان نے سینکڑوں کی دیک، ہی بات سمجھی۔

دیا کھیا۔ میرے لاٹوں کا مانس پر مانما کی سادھنا کرتے کرتے (اپنے آپ کو گھٹ رکھ کر لیتے) کہ دبیا ہوں میں پھر تھر کر سڑکوں میں

میں نے (اپنے زندگی کے دنوں میں) اپنے آپ کو شوپیا کا میدان کاٹ کر نکال ڈالا۔ ایسا کچھ تل کو نہ تو کوئی یہدی نہ تو کوئی ہوش ہی رہا۔ میں آپ ہی اپنے آپ میں جاگ آئھی۔ پھر معلوم کس ملی میں سے مجھ تھے کیسے بیتر (امرت روپی) کل کا پھول بھل آیا۔

ویاکھیا۔ میں نے پرمانا کی سادھنا کرنے کرنے شوپیہ روپی پرھیو تیاگی در قی سے (سادھن اسما کا وقت امتحان) اپنی عمر گلزار دی۔ ایسا کچھ تل کو تپیا کرتے کرتے سنار روپی نہ تو کوئی یہدی نہ تو کوئی ہوش ہی رہا۔ اس طرح کی سادھنا کرنے تھے پھر اپنے آپ ہی اور پا روپ ایگان انھکار کے نیند سے گیان روپی جاگ کھل آئی۔ پھر معلوم مجھ تھے کہ بیتر کیں کل سرکے ملی میں سے نریف گیان روپی کل کا پھول بھل آیا (بس داکیر کا پرمان گیتا ۱۶/۱۶) اگلے داکیر عہد کے پرمان میں دیا ہوا ہے۔ پڑھیں۔

اوپیکھت را وہنہ را وہنہ رو دم
و اکیر کو را وہنہ اچھہ ایس بکوہ سرہ
دو بدر دشات اسان چم گلندان سہزی پر دم
میں پیسے کو وہم پیا اس سرہ (۲۰)

کھونے میں سے میرا (راپا) ناون کھو گیا۔ یہ کھو کر اس بجھہ بیتر دھوہی ہوئی میں اپنے افذا آئی۔ پھر سنتے اور کھیلے آتا کو پس اپت کیا اور لکھنے کے بغیر اپنے آپ ہی چان کر پر کاشت کر ڈالا۔

ویاکھیا۔ جب کہ میرے انہ کر کوں میں بسا ہوا ایگان روپی کھو ڈالے

میں اسے میں اسی کھو گئی۔ اتنے کھونے کا ہی تھے

لیا کھونے کا ہی تھے جو میں بخوبہ سرے تھا۔ اتنے
ویاکھیا۔ اسی سے تھا۔ اسی سے تھا۔ اسی سے تھا۔ اسی سے تھا۔

لیا کھونے کا ہی تھا۔ اسی سے تھا۔ اسی سے تھا۔ اسی سے تھا۔

بھٹ گی۔ اس طرح سے تن شے ہو جائے پر ایک ہی پیروخ (ادم) کے کارک نے اُس ایک ہی درجہ کا مردہ کارنوں سے رہت پوری بہم کے جانے کا مارگ دھکلایا جو جو یہی کوئی ایسا ہی من کے ارتحات نشجع اُنک بڑھی میں وچار کر کے اُس پرستاں کے کھوچ کرنے کو جان لیں تھے وہ اُس پرستاں کے پریم اور کھوچ میں پڑ کر دیجئے کیوں نہ ہو جائے۔ جھنگل نے سینکڑوں مسازی اسکھ اور شال سورگ سکھ کے پد لے ایک ہی پرتو ارتحات ادم کے جپ اور دھیان کو آتم پڑا یتیار پوپ پہنچ سکھ کا لایہ سمجھا۔

پریان۔ جو یہ ایک شر جانیا ہو جانے کیا ہوئے ایکستے سب ہوت ہیں سب سے ریک ہے جوئے سب آئے اس ایک میں ڈالیاں پھل پھول کبیراں پھی کیا رہا۔ کہہ پکڑا جب مول

سُورگِ جامِہ تراوت الکھہ پر دوم
دُل لہ ناوم دیہ سترہ پرے
پست (وہن و تھت) ملت دُر نووم
شین تر بالہ کاس پٹھ نسپھے (۴۳)

سورگ کو کے اولک دستر تیگئے پرہی میں تھے الکھہ پر اپت کیا۔ پیشور کو پر اپنی کرنے کی اچھا میں دردیں سہن کیں۔ پرہی سے پڑا اٹھ کر پاگل کو جگایا۔ ہی تات وہ میرے نات کو چلت جیجے جا کوئکھ تھم کو درخت پر گھری نیند پڑی ہے۔

بھنی یوگ بیل کی چھاتی کو ڈنڈ اور مون رُوپی مفہوم تالا لگا کر پھری ہے جو کوئی یوگ اس ڈنڈ اور مون رُوپی شکتی کو تالگ کر کر ایسا من کر کے بھٹ کر بلکے سمجھو کر دی یوگ اسی سناو کے ہمہ سے کوئی میں پھر دوب گیا اور اس نے اپنی یوگ بیل کی ساری کامی یکھیہ کو کھلائے کرنے دے دی۔

پریان۔ شری یہ گوان لکھتے ہیں۔ دُن کرنے والوں کا ڈنڈ ارتحات سیدھے مارگ میں چلتے والوں کو دُن کرنے کی شکتی میں ہوں۔ بھٹے چاہئے والوں کا نیلائے میں ہوں گفت رکھتے جوگہ بھاؤں میں مون میں ہوں۔ گیان والوں کا گیان میں ہوں (لکھا ۱۱) بھاؤ پہنے کہ جو کوئی یوگ کر قیری تیاگ روپ پرستاد سے اخنوایں ہیں تھے سے خلی اور مان میں یعنی کر ڈنڈ اور مون رُوپی شکتی کو تیاگ کر کر ایسا من کرنے لگا ہے سمجھو کر اُس نے اپنی ساری یوگ بیل کی کامی یکھیہ کو کھانے کے لئے دے دی ارتحات اپنی یوگ بیل کھو دیا۔

لل بُو دریس دُرے دُرے
لکف تھیپو تھ دچھس
ریس نُن نیرنے سو فٹ کریے
لکھیون دیتُون سچھس (۴۴)

میں اُل اپنی چھاتی کو تالا لگا کر گلی گلی پھری ہے جو کوئی دکھادا کر کے نہدار تکلے وہ کوئی کے بیتر دوب گیا اور اُس نے زادپنی کامی یکھیہ کو کھانے کے لئے دی دیا کھیا۔ میں اُل ہر ایک جگہ شہر اور گاؤں کے گھیون اور کوچوں میں

اوھیا ۳ داکھیہ ۲۳ کا پرمان اچھی طرح پڑھ کر دچاپیں۔

سیند سورگس ماجن کیا چھوئی باسو
زکس داسن آسون دویش
ٹکھہ۔ رکھی تلاسون شوئے کھا نو
پلے۔ آسون کاسن بھید (۲۳)

سورگ لوگ پرآپتی کی اچھیا کرنی تم کیا لایہ دایک بھائیں۔ میں
آقابے۔ زک میں داس ہونے کا کارن من کے بیتزا دویش (ارتحات کرو دھر
ویر ارشیا) کا ہر ناہے اور کرو دھر لغرت ایتادہ کا نہ ہزنا ہی بشوئے
پرآپتی کے لکھن ہیں۔ دویت کا بھید بھاڑ مٹانا ہی سویم (پرما تم متردپ)
ہونا ہے۔

تئہ مئنہ گلیں پرکش کوئی
بوہم شیک لکھنے دزان
تھد جایہ دہارنا یہ دہارنا دڑم
ہاکاش تپ پرکاش کوڑم ترہ (۲۵)

میں تن اور من سے اُس کے طرف گئی۔ میں نے وہاں سوت پر ما تاکے
ہی گھنٹ بجھتے سئے اسی دہارنا لگانے کی جگہ پر میں نے دہارنا بیس دیں۔ ہاکاش
اور پرکاش کو جان کر بیجان دالا۔

اوھیا یعنی تن اور من سے ارتحات اہنگ کر کر کے آت پیغم اور وشنہ من
سے دیجان لوگ میں سخت ہو کر اُس اپنے انتہا کے طرف گھسن گئی میں نے

ڈیا گھما۔ اینک پرکار کے کامن روپی و شال سورگ چکھ کے لوگ و سخت
پیٹکے پرہی تھکام مردہ منکلیپ تیاگ سینیاں ذرتی پرایت ہوئی اور من
نے پریشور پرآپتی ہونے کے پیغم میں پڑکر ما ترا پرشن ارتحات مکھ۔ مکھ
سردی۔ گرمی۔ ماں۔ ایمان ایتادہ کی دریں اپنے آپ میں سہن کریں۔ رات کے
پھٹے پھر بھی سمعے پر اٹھ کر پرچکر دن گھول کے لئے میں بندھے ہوئے اس
اپنے سوت پاگل جو آنما ارتحات اپنے آپ کو جاگ اٹھایا یہ کہ یوگ سادھنا
کرنے میں لگ گئی۔ ہی نات راس میرے گیان ایڈیش کو وچار کر کے سوچ لے
کیوں کہ تم کو اس سمارت روپی پریشور کے اشو قھر و رکھ پر اگیان روپی
لئے کیا گھری بیند پڑھی ہے۔

پرمان۔ جو لوگ۔ رگ۔ یہ و اور سام ان تینوں دیدوں کے
کرم کرنے والے تھا سوم یا جی اور پاپی سے ہوتا ہے یگیسے مجھ
پرما تاکی پوچا کر کے و شال سورگ لوگ پرآپتی کی اچھیا کرتے ہیں۔ وے
بیند کے پونہ لوگ میں بینچا کر اینک دوہ بھوگ بھوگتے ہیں اور اس
و شال سورگ چکھ کا بھوگ کر کے پونہ کا لکھے ہو جانے پر فے پھر جنم
لے کر مرت لوگ میں آتے ہیں۔ اس پرکار تینوں دیدوں کے شکام کرم کے
بھوگوں والے پوشن نارم باز جنم درن تک چکر میں ٹھومنتے رہتے ہیں (لگتا
۹ ۲۱/۲۲) ہی ارجن تھج پریشور میں مل جانے پر پرم سیدھی پائے ہوئے ہمانتا
اُس پیٹر بھن کے چکر کو ہیں پانے چو مکھوں کا گھر اور ناشوان ہے۔ ہی
ارجن سورگ سے بیکر بھنکے لوگ تک جلتے ہیں لوگ ہیں۔ وہاں سے کبھی
نہ کبھی پیٹر آرتی ہوتی ہی رہتی ہے۔ پر نتو سی ارجن تھج پرما تاکیں مل
جلے پر پیٹر جنم نہیں ہوتا (لگتا ۱۴۔۱۵) سورگ سکھ کے دستروں کو

دھان سنت پر سامنے کے ہی گھنٹہ ارتحات سو اسیں سو اسیں شبدیں بجھتے تھے اور پھر میں اُسی انصال نے لگانے کی جگہ پر یوگ کی دھیان دھارنا میں دیتی گئی۔ تب ہی پھر میں نے آکاش ارتحات تراکار ایکھت سر دپ پر بہم اور (پرکاش) ارتحات اُن پر بہم سے پرکٹ ہوا بر سار در شمن پر کاش میں جگت کو تن تو سے جان کر پرکاشت کر دیا۔

ایس تی سیو دوی گڑھ تی سیو دوی

سیدس ہموں میہ کریم کیا ہ

یہ لنس آسیس آگے دوی

فیدس ہنہ وندس کریم کیا ہ

آئی بھی میں سیدھی اور جاؤں گی بھی سیدھی۔ جھم سیدھے کو یہ طیڑھا کر بیگا کی۔ میر منبع نے ہی اُس کے بیچان میں تھی۔ جھم (مارگ کے) جانستے والی کو اور بیچانی ہوئی کو (یہ طیڑھا کرے گا)۔

دیا کھیا۔ میں سیدھے مارگ سے تیسی سر دپ آئی بھی ہوں اور پھر بھی تپیا کر کے سیدھے مارگ سے دلیس جاؤں گی جھم سیدھے مارگ سے چلنی والی کو یہ پرکٹ گنوں کا طیڑھاں کیا کرے گا۔ میں اپنے پورا بھار کے منبع سے ہی اُس اپنے اشترا اتا (پرمانا) کے بیچان میں تھی جھم پر زرد کے جانستے والی کو اور پرکٹ کے کارپہ۔ کرن اور دشیوں کے آکار میں پرہ نہت ہوئی پرکٹ گنوں کے طیڑھے پر کے جانستے والی کو (وڑا اُس اپنے اشترا اتا (پرمانا) کے بیچان میں آئی ہوئی کو یہ پرکٹ کے گنوں کا طیڑھاں تھے کیا کرتے گئے؟

روٹ بس وائیز دنست طیڑھے پن کو آپ گیتا ادھیاۓ ۲۲ کو پڑا نہ کراچی طرح

شہ وان شہرت شش کل و زم
پرکرت ہزرم پتوہنہ سیتی

وچار کر کے سمجھ لیں کہا شوری نے یہ طیڑھا کیا سمجھا ہے
پرمان۔ درخٹھا ارتحات ادھیاۓ ۲-۲ سے دیکھنے والا پریش جب جان لیتا ہے کہ (پرکر تک) گنوں کے بغیر دوسرا کوئی بھی کہا جیس ہے اور جب (تینوں) گنوں سے پرے نت کو پیچاں جاتا ہے تب وہ جھم پریشور میں مل جاتا ہے۔ دیسیہ دھاری بخش دھیس کے ایتھے کے کارن (سر دپ) اُن تینوں گنوں کو اپنے کرمن کر کے جنم سر تھ اور بگھاپے کے دکھوں سے وہ مکھت ہوتا ہوا امرت کا ارتحات جو کھس پد کا انہوں کرتا ہے (گیتا ۲-۱۴) (دوسرے پرمان از دیوان حافظ قاری)

بُدعاً آمدہ ام ہم بُدعاً باز ریم سر دھا با تو قریں باد دھدایا و رغما
فلک آوارہ بُر سُو کندم میدانی روکھے آیڈھ از صحبت جان پرورنا
(ارتحا) میں (پسے تپ بل سے سیدھا) دھا کے ساندھ آیا بھی ہوں
اور پھر بھی (تپھیا کر کے) دھا کے ساندھ واپس جاؤں گا (یہی میرے آخر دیو)
میرے کو تھا کے ساندھ وقت وفا ارتحا اتھے نت دیکی ہوتی ہے اور خدا ہمارا
مددگار رہے۔ فلک ارتحات ھیگوان کی مایا (یہ طریقہ جھٹے یہ کرتے کے
کارپہ کرن روپ گن) بھی ہر طرف پریشان کرتے رہتے ہیں، ہی آخر دیو
جلستے ہو کر اس نایا کو تھا ہے اور میرے (ارتحات بھیو اور انشرا تا کے)
ہم صحبت کا ہر وقت صند پیدا ہوتا ہوتا رہتا ہے یعنی یہ سفار موہ۔ روپی
کا منیں مجھے ہر وقت پریشان کر رہتے ہیں۔ یہ دیوان حافظ کا غزل
وہار تھے۔

لوگھن تارہ سیدت و انجیج بزم
شنکر گنیم تمیی سیتیم (۲۷)
پھر بن (کاٹپھن مارگ) کاٹ کر میرا شش کل جاگ اٹھا۔ پر کرتی
کو پون سے بھسک کر ڈالا۔ پریم روپی اگنی سے ہی میں نے اپنے کلیج
کو بھن ڈالا۔ ایسا کرنے پر پریم پر بھم شنکر کو پالا۔

ویاکھیا۔ اجھیاں روپی چکھ بھومکائیں اونگھن ہونے پر (پھر
ساتوں بھومکا کے مارگ میں پھنگر) میرا شش کل ارتحات آندھر پوپ
امرت کا سوم رس پر کٹ ہو کر جاگ اٹھا میٹھے (بیان پر ہوت ادھ
سات اور تر گز میئے) پر کرتی کو پون سے ارتحات (اجھیاں روپیاں
دایو سے بھسک کر ڈالا۔ یہ کر پریم روپی اگنی سے ہی اپنے کلیج کو بھن
ڈالا۔ ایسا کرنے پر ہی میں نے پر بھم شنکر (ارتحات بھیم تھی) کو پا
لیا۔ (اس سے پہلے داکیہ ۲۶ میں بھی اسی پر کرتی کا ورنہ ہے اور اسی
پر کرتی کو ادھیاٹ ۵۔ واکیہ ۱-۲ میں گھوڑے کا سُرپوپ نے کر
ورنہ ہے)۔

سلکھ گور بھمانڈہ یٹھ کمن دی جھم
شش کل واڑم پاڑن تان
گانکہ امرتہ پر کرت برم ۴۵

لوق بھائی مورم آندہ وند تان (۲۸)
مُجھل نے بھمانڈکے اُپر گور و کو دیکھا اور پھر میرا شش کل
میرے پاڑل تک پہنچا۔ میں نے اپنی پر کرتی کو گیان کے ہرست سے

بھر کر پُر کی اور سارا ٹوپھ آدھ سے انت تک مرکز شٹ ہو گیا۔
ویاکھیا۔ مجھل نے یوگ کی ساتوں بھومکا کے مارگ بھمانڈکے اُپر
پھنگر بھمانڈ کے بھی گور و پر بھم (بھیم تھی) کو ساکھتات کار کر کے
دیکھا اور پھر میرا شش کل ارتحات آندھر پوپ امرت کا سوم رس آدھک
پر کٹ ہو کر میرے پاؤں تک پھیل کر پہنچا اور پھر میں نے کھتر گز جھوڑ دی
ایچی پر کرتی کو ارتحات پتے آپ کو گیان روپ امرت سے بھر کر پُر کی اور بیان
پس بھی سارا ٹوپھ آدھ سے انت تک سر کر سہہ ہوں لشٹ ہوا (رس و ایکہ میں
ورنہ پر کرتی کو جھوڑ بھوت پر کرتی کے نام سے جھگوان نے گیتا ہے میں
درجن کیلے پڑھ کر وچار کریں۔

پنجم مال۔ جس سیحت میں پر بھاتا روپ اگنی کو پر اپت کرنے کے لذیش
سے اوم کار کے جھ اور دھیان دوارا مہنچن کی جانلہے جہاں پر ان وایلو
کا بھلی بھانترہ و دی پوکوک نیرو دھر کیا جاتا ہے۔ تھقا جہاں آندھ سرو پ
امرت کا سوم رس (رشش کل) ادھک تانے سے پر کٹ ہو کر پھیل جاتا ہے
(اس سے مگر میں سر دتا و شدھ ہو جاتا ہے (شویتا شتر ایشند پتے) اس کے
بعد جب وہ یوگی ہمال دیپاک کے سماں اپنے پر کاش مٹے آتم تو کے دوارا
بھیم تھر کو (ارتحات بھمانڈکے اُپر گور مارج پر بھم) کو بھلی بھانترہ
پر تکھ دیکھ لیتھے۔ اس سے دھمماں شچل ساے و کاروں سے ہرست
سر دتا و شدھ پھم دیو پر بھاتا کو جان کر سب بندھوں سے سدا کے
لئے جھوڑ جاتا ہے (شویتا شتر ایشند ۲۵)

ہر زیادیں ہے ہے پیا ایس
ہر کھنچے پیم ہند ہے ہر شو نٹھ
تھ پھنس شن پت ہے
تھ پھنس ستن برد نھد (۲۹)

دیں جنی۔ ن تو میں رچیں جی۔ ن میں نے سستی ن تو میں نے سونڈ
کھائی۔ ن میں چھ کھنچے ہوں نہ میں سات سے آگے۔

ویاکھیا۔ ن تو میں کھم سشار میں پیدا ہی ہوئی ہوں اور ن تو
وچ بی کمیرے سے بھی کوئی بچہ سی پیدا ہوا۔ ن تو میں نے کھی کامنی ن
تو میں نے کھی سونڈ (بڑھ دلی خواک) کھائی ہے ن تو میں پیدا ہد بھا و ن
نام یوگ مارگ کے چھٹی یخوم کے بیچے ہوں۔ ن تو میں گاڑ سو شیتی نام
یوگ مارگ کے ساتوں بھوکلے سے آگے بیچے ہوں ارثات میں ساتوں
بھوکلے جوں نکت ادھر ہیں ملکی ہوں (اس جوں نکت ادھر کے پہ اپنی
ہوئے پڑست ہی ہے ن است بی ہے ن اہنکا ساری ہے ن پیدا ہکا ہوا
ہے نہ سارا ہی ہوا ہے ن جیتا ہے ن مرتا ہکت، ن بچہ اور پیدا ہو۔ ای
ہے نکول کھان ادویت اتر نزل بھا و ہے)

جیان رُوپ سات بھوکلیں (۱) اشیا چھیا (۲) وچارنا (۳) شغ
حال (۴) استود پتہ (۵) آسم ساکھتی (۶) پیدا ہد بھا ونا (۷) تو بیج گا = یا =
گاڑ سو شیتی

ڑی دیوہ گلے۔ تھ دہڑی شرک
ڑی دیوہ دتہت کی نزل پرمان

کری دیوہ ٹھہر روسنی دزک

کس تاہ دیوہ پوک پرمان (۲۰)

ہی برم دیوہ پریشور تم ہی تھا سے آکاش اور پر نھوی میں
شہیماں ہو کر پھیلا ہوئے۔ ہی برم دیوہ تم ہی سارے شر بر دل
کے کھو شکو میں پران شکتی ڈالی دی۔ ہی برم دیوہ تم ہی تو بیڑھیتے
کے نج چاہے گا۔ ہی برم دیوہ گون تھا سے اس مایا کا ہد انت اور بدھ
کا پرمان جان سکتا ہے۔

سُفِرِ منزِ بَاغِ كَرِتَشِرِ رَوْزَے

رَوْزَیِ بَرِمِ شَوَّ شَبَوْ اُگُور

لَلَّهُ مَنْزِ بَاغِ بَیِّنَ اللَّهِ نَادِن

بَرِمِ منزِ بَاغِ كَرِسِ گُورَهُ گُورَه (۲۱)

اس سشار کے بیتھر (بیگاٹ پر) شوین بھی نج کرہیں ہے کا ہمال
تھر فر (بھی برم شو۔ شہو) اگور (بمردہ کارلوں سے رہت شو نیز مُر دپ
اوکھت پر برم پوکانٹ شیش) نج کر رہیں گے اسی (تو مروپ شو نیز
آکار پر بھم شو) کو میں اپنے ہر دئے رُوپی کو دی میں ہلاقی رہوں گی۔
اور پھر اسی کو اپنے جگر میں (اوم۔ اس کے شبد کہ کہ کر) گورہ گورہ
ارثات پریم۔ پیار اور لام کری رہوں گی۔

تیسرا ادھیاے

کرناک کلاؤ نو پچھوئی بنت گڑھن
و نت گڑھن کیاہ پچھوئی پائے
کشقاں پھل پچھوئی میلت گڑھن
ولت روزن کش پچھوئی نیاے (۱)

تمنے کرم روپی ورکہ بن کر جانا نہیں ہے۔ کہہ کر جانا نہیں سے واسطے کون
سا اپائے ہے۔ ملاپ کر کے جانا ہی گیاں پرایتی ہونے کا پھل ہے۔ پیٹ
کر کے رہنا کون سانیا ہے۔

دیا کھیا۔ پر ماٹاکی پرایتی ہونے کے لئے ہم نے چہاں سے ایک پرکار
کے سکام کرم روپی پھل دار ورکہ بن کر نہیں جانا چاہیے کیوں کہ ان سکام
کرموں سے دہ پر بہم (ہمکش پھل نہیں ملنا) اور بنت ہفت پرکار سے سکام
کرموں میں ورت کر پھر یہ کہہ کر جانا کہ ہم کرتا رکھ ہو گئے۔ ارتحات ہم نے
سلکے گئیہ دان اور دھرم کئی۔ ایسا ابھیمان کرتے رہنا۔ پر ماٹاکے پرایتی
کرنے کا یہ کون سا اپائے ہے۔ اپنے انتر آتما کے ساتھ ملاپ کر کے جانا
ہی گیاں پرایتی ہونے کا پھل ہے۔ ایک پرکار کے سکام کرم کر کے اپنے
آپ کو پر کرتے کے گنوں میں پیٹ کر کھانے کیس شاستر کا نیکے (فیصلہ) ہے
پہ مان۔ اگیاں کے بیتر پڑے ہوئے وے مورکہ سکام کرموں میں

بہت بہت پرکار سے درستے ہوئے اور پھر یہ کہہ کر کہ ہم کرتا رکھ ہو گئے
ایسا ابھیمان کر لیتے ہیں۔ دے سکام کرم کرنے والے لوگ و نیوں کی آنکھی
کے کارن کالیاں مارگ کو نہیں جان پاتے۔ اس کارن دے یارم بار دلکھ سے
اٹو ہو کر پوئیہ کرموں کا پھل پورا ہونے پر سوگ آدھ لوکوں سے مٹا کر
نچے مرتبہ لوک میں گرئے جاتے ہیں (منڈوک اپنڈ ۱۷) اپنے ہی بیتر
سچھت اس بہم کو جانا چاہئے کیونکہ ہم سے بڑھ کر جانشی لائیں۔ نتو
دوسری کچھ بھی نہیں ہے (شویتا شنگر اپنڈ ۱۸) (پیٹ کر کے
رہنا) پریش پر کرنے میں سچھت ہو کر پر کرتے کے گنوں کا اپہ بھوگ کرتا ہے
اور پر کرتے کے گنوں کا یہ سینیوگ ہی پریش کو جعلی بڑی یونیوں میں ہم لینے
کے لئے کارن بن جانہ سے (گیتا ۲۱ ۲۲)

آہمہ پندرہ نادہ چھس لمان

کلت بوز مٹے ہیوں میتہ دیرہ نار
سہمن شاکن پلؤں زن شمان

زد یحکم برمان گرہ گھڑہ ۱۸ (۲)

یہ (پندرہ سادھناروپی) کچھ تکے سے اس سدار سمندر میں نادو کو کھنچنے
کی ہے۔ کہاں سے وہ میرا پر ماٹا لئے گا کر مجھے بھی پالد کرے (میری آنادھنا)
یکے بھی کے تھاںیوں میں پاٹ پٹنے کے موافق جذب ہو رہی ہے اور میرا
جی (جیو آتما) گھر جانے کے لئے برم کرتا رہتا ہے
دیا کھیا۔ میں تو اپنے سادھناروپی کچھ تکے ہی اس بھیانک
سدار سمندر میں سے اپنی نادو کو کھنچنے رہی ہوں۔ کہاں سے وہ میرا پر ماٹا

۵۶ فلی مشوری و ایکیہ رہیں
البی کمزور سادھنا ہونے پر میری پر ارتحان شستے گا کہ درجہ مجھے اس بجھہ ساگر
ستے پار کر دے یہ کوئی نکہ میری یہ سادھنا کچھے مٹھی کے تھالیوں میں یا اپنی پڑنے
کے موافق جذب ہو ہے کہ ارتحان میرے امیت کرنوں میں یہ سادھنا
رُذ پنجا اسرت بجل پڑنے پر دا سناول کے آسٹکتے کے کارن جذب ہو ہے
ہے ارتحان دکھ سکو دای کا انتہ ہیا نہیں ہوتا اور پرستا نما پرستا کی تبر
اپھیا ہونے پر میرا جھوٹا اپنے گھوار ارتحان اُس آدھ کارن پر بھم کے
طرف جانے کے لئے یہ من کرنا رہتا ہے۔

پرمان۔ پریشنا پور ک اڈیوگ کرتے کرتے پاپوں سے مشدھہ ہونا
ہوا بوجی ایک جھوٹوں کے انتہ توں سدھی پاک (انتہ میں پریمہ گتھی کو
پرپت ہوتے ہے (لیکن اسے) بت تاک کچھے مٹھی کے تھالیوں میں پانی پڑنے
کے موافق حالت ہوتی ہی رہتے ہے۔ ایشوری نے ہی درشنا نت سمجھایا
ہے۔
زعشن ناتام ما جمال یار مستغفیست
باب درنگ دفال و خط چھ حاجت روی زیبارا
(دیوان عماقتو)

پمانا کے سروپ و چھن آئی تھے گڑھن گڑھے
اوکھوچ کرنے
کا درن
پیش کچھے دن دھوڑ رات
بوروئے آئی تو رسہ گڑھن گڑھے
کنہہ نہ کنہہ نہ نہ کنہہ نہ نہ کنہہ نہ تھے رکیاہ (۳۴)
(آجھن) آن گنھی سے آئی۔ اب جانا چاہیے۔ رات دو دن چلتا
چاہیے۔ جمال سے ہم آئے ہیں ادھر ہی جانا چاہیے (کیا) وہ جو کچھ بھی

ہیں۔ کچھ بھی نہیں۔ تو پھر کیا
ڈیا کھیا۔ ایشوری کہتی ہے کہ ہم آدھ کاں سے (آجھن) ارتحان
جس کی کوئی گنھی ہی نہیں۔ جنم درمن میں پڑکھم لیتے لیتے آئے۔ اب ہم کو
سیدھے مارگ سے ہو کر واپس جانا چاہیے۔ دن اور رات کھوچ کر کے جلتے
ہی رہنا چاہیے (کیا) جہاں سے ہم آدھ کے آئے ہیں۔ ہمیش پھر دیہیں
اپنے نویں کارن پر ہم و شنز پر کے اور کھوچ کرتے کرتے جانا چاہیے جس
پر میں پہنچے ہوئے پرش پھر ساریں نہیں لوٹتے۔ پس پر جنم گھن ہیں نہیں
کرتے (اُس پر کوئی نہیں کھوچنا چاہیے) ایشوری کہتی ہے کہ اس پر ہم شکھ
کے کارن (بھوپاپ) بھم کے سروپ کھم آنکھ آدھ گیاں بندیوں سے کہ
وہ ایسا ہے۔ کچھ بھی نہیں جلتے۔ اخوا۔ داکھم بندیوں آدھ کرم بندیوں
سے کادھ ایسا ہے۔ کچھ بھی نہیں جلتے۔ اخوا۔ من آدھ اپنے اکر نوں
میں نہیں کرتے ہے کہ وہ ایسا ہے کچھ بھی نہیں جلتے (کیا) پھر اس بھو ما پر
کا سروپ کیا ہے۔ ایشوری کہتی ہے کہ اسی پر کھوچ اور دچار کرتے
کرتے شرناگت ہو کر اس بھو ما پر اس سروپ کی جگیسا کرنی چاہیے
پرمان۔ داں اسی بھم کم۔ غیر بندیوں جاتی۔ دو فی ہیں جاتی۔
میں نہیں جاتا (۳۵) جس پر کوارشیں کو اسی پر ہم کا اپدیش کرنا چاہیے
دھ ہم نہیں جلتے دھ ہم اے سبھی میں نہیں آتا کیونکہ اس بھم کا سروپ
جانشی سے بن ہی ہے اور نہ جانشی سے بھی پڑے ہے۔ ایسا ہم کچھ
ست پرنسپوں سے جلتے آئے ہیں جھوٹ نہ پہاڑے مل من اس بھم کا
دیا کھیاں کیا تھا۔ لیکن اپنکشہ ششکر بھاٹ (کھوچ کرنا) اس
سختاں کو ڈھونڈھنکالا چاہیے کہ جہاں جلانے سے پھر کبھی بھی واپس

لوٹنے نہیں پڑتا۔ میں گنگلکپ کرنا چاہیے کہ اس سنار و رکھ کی پڑا تھا
پر درتی جس سے اپنی ہوئی ہے اُسی آدھ پر چشم پر یہم کے اور میں جانا
ہوں جو ماں اور موہ سے رہت ہیں جن کا ایکمان اور گیان نشٹ ہو گیا
ہے جنہوں نے آسکنہ دُوش اور سنگ دُوش کو جیت لیا ہے جو ادھیا تم
دچار میں لگے ہوئے ہیں جو کامنا سے رہت ہیں جو سکھ اور دکھ پر یہ
اور اپریہ دندول سے چھوٹ گئے ہیں وہ گیا فی جماعت اُس اونٹاشی پر مر
پد کو پر لایت ہوئے ہیں جہاں جا کر پھر والیں لوٹنے نہیں پڑتا۔ ایسا دہ
میرا پر یہ سخاں ہے۔ اُسی سے تو سورج۔ تو چند رہا اور نہ آئے ہی
پر کاشت کرتے ہیں (لکھا رکھا ۱۵)

سندہ ر دنیہ ایس نہ گڑھن گڑھم
لکن گڑھم داؤ تو کیا
کہنس پھسی نڑن گڑھم ۲۲
اڑن گڑھم سوکھشم پر کار (۲)

میں تو یہاں رہنے کے لئے نہیں آئی۔ اب چھے دیسیدھے مارگ سے
جانا چاہیے۔ جو گوکر رکھشک والی جیسا بن کر چلنا چاہیے نہیں
تو) بھوما پد کے جلگیا سو کرنے پر (لطی) ناچنا ہو جائے گا (ایسا وچار
کر کے) چھے سوکھشم پر کار سے اپنے سروپ کے میتر گھستا چاہیے۔
ویاکھیا۔ ایشوری کہتی ہے کہ میں یہاں سنار میں رہنے کے لئے
نہ آئی ہیں (آج نہیں تو کل دیہہ تیاگ کرنا ہی ہے) اب چھے سادھنا
روپی سیدھے مارگ سے ہو کر جانا چاہیے کس طرح) چھے تو گوکر رکھشک

پر ان دیوار تھات سب میں سوچت پر ان سروپ آنکا کو ایکنے سے جان
کر چلنا چاہیے (نہیں تو) مجھے اُس پرم سکھ پر اپنی (کہنس پھی) بھوما پد
بھوم تھو کے جلگیا سو کرنے پر۔ اور اس نست مایا کے مودہ میں یعنی پر
ال سنار روپی آواگن ار تھات جنم و مرن کے کھیل کا ناچنا ہو جائیکا
ایسا دیگان یہی لارکا بچھے سوکھشم پر کار سے۔ اُس پرم سکھ کے
کارک بھوما پد پر یہم کو جاننے کے لئے اپنی ہی بیتر گھستا چاہیے۔
پر ماں۔ (کہنس پھی) ار تھات بھوما آنکھ کے سروپ کا پر تہ
پارن) جہاں کچھ بھی اور نہیں دیکھتا۔ جہاں کچھ بھی اور نہیں گھستا۔ تھا
جہاں کچھ بھی اور نہیں جانتا۔ وہ بھوما ہے۔ لنتو جہاں کچھ اور
دیکھتا ہے۔ کچھ اور نہیں جانتا ہے۔ کچھ اور جانتا ہے۔ وہ اپ ہے۔ جو
بھوما ہے وہی امرت یہم کھلانا ہے۔ وہی جاننے یوگی ہے جو
اپ ہے وہ مرت تو (پیتر آورتی) ہے (چھاندیگر اپنشنڈ ۲۳-۲۴)

سندہ ایس کم دلشہ تر کہ و تے
بھوما پد گڑھہ کہ و تہ کوہ زانہ و تہ
بھوم کے سروپ ایتھہ دا یا لکھ مہ نتے
کا دچار کرنا ایتھہ دا یا لکھ مہ نتے
چھم پھنس پھوکس کو سہ نہ سست (۵)
میں کس دلش اور کس راستے سے آئی۔ کس راستے سے واپس
جاوں گی۔ کس طرح اس راستے کو پاؤں گی۔ نست میں وہیں پر (ار تھات
لپٹے ہی بیتر) دیگان دچار اپن ہو گا کہ میرے اس شوونیہ شاہی
روپی شناس میں کون سی ستا ہے۔

گلی سخنی و اکیپی رہیں۔
و بیا کھینا۔ (و چار کس پر کار کرنا چاہیے) میں کس دلش اور کس مارگ سے آئی ہوں اور کس مارگ سے چل کر داپس جاؤں گی اور پھر کس طرح سے اُس مارگ کو پاؤں گی۔ یہی سوچ چار کے اُن میں وہیں پر ارتقایات بارم بار ایسا ہی چار کرنے پر آپ ہی میرے میتریہ شچے اُنکے دیگان و چار اپن ہو گا کہ میرے اس شوونیہ شاس اوساس میں یہ کون سی ستاہے۔ ارتقایات یہ میرا شریپ کس ستا سے چلتا ہے دوںی بولنے میں آتی ہے آنکھیں پسے ویشیوں کو دیکھتے ہیں۔ کان سننے میں آتے ہیں۔

پکر مالا۔ شجھا چھیا دلے پُرشن کو گیان پراپتی کے لئے و چار کرنا چاہیے کیونکہ جس پر کار پر کاش کے بنا کبھی بھی پیدا نہ کر سکا جائے۔ میں کوئی سوچیں ہوتا۔ اُسی پر کار و چار کے بنا کسی بھی سادھن سے گیان ہمیں پوتا۔ میں کون ہوں۔ میرا سروپ کیا ہے۔ کہاں سے آیا۔ یہ جگد کس پر کار اپن ہوا۔ اس کا کہن کون ہے۔ تھا اس کا ریاداں کارن کیا ہے اور میں پارچ بھوٹ اُنکے شریوپ ہوں اور نیندیریہ سوہ ہی ہوں۔ بلکہ اس سے بھی کوئی ہوں۔ وہ و چار اس پر کار کرنا ہوتا ہے۔ اپر و کھیڑہ تو بھوڑہ شنکر۔ آج اریہ کرت (اُتم ستا) جو یہمہم دوںی کے دوارا بتلایا ہمیں جاتا۔ بلکہ جس بہم کی ستائے یہ دوںی بولنے میں آتی ہے جس کو من اسے کوئی سمجھ نہیں سکتا بلکہ جس بہم کی ستائے یہ منش کا من جاتا ہوا ہو جاتا ہے جس کو کوئی آنکھوں کے دوارا دیکھ نہیں سکتا۔ بلکہ جس کی ستائے آنکھیں پسے ویشیوں کو دیکھتی ہیں جس کو کان کے دوارا کوئی شن نہیں سکتا بلکہ جس کی ستائے یہ کان سننے کے طاقت میں

آتے ہیں۔ یہی اُتم ستا ہلکے میں ہے اسی کو ہر وقت چار نتے رہو (لکھ اپنیشاد ۲/۲۷)

سیند اُس دتے گیں نہ دتے
سہ منز سو شفے تو ستم دھم
پھندس دھم ہار نہ آئھے
نادہ تھوس دہر کیا بُو (۶۱)

میں سیدھے مارگ سے تو ٹھیک آئی۔ قریب سیدھے مارگ سے چل کر داپن ہمیں گئی (سادھا رونی) سبیت مارگ سے چلتے چلتے بیج میں ہی دلن۔ دووب گیا۔ جیب میں دیکھا تو دنال کوڑی بھی نہیں۔ بھلا کشتی دلے کو پار نے جانے کے لئے کی دوں گی؟

دیا کھیا۔ میں پر جھم کی اولادھنا کرنے کے لئے اس منش روپی دیہ کے سیدھے مارگ سے تو ٹھیک آئی۔ مگر ہمال سنا رتے سیدھے مارگ میں چل کر داپن ہمیں گئی (ریکر) سادھنا روپی سبیت مارگ سے چلتے چلتے سنا رتے کوہ اور کامناؤں میں پڑ کر میرے کو دلن دووب گیا۔ ارتقایات زندگی ختم ہو تو یوڑھایا آگیا۔ سادھنا دلی کانی کے جیب۔ میں باخت ڈالا تو دنال دیکن کوڑی بھی باختہ نہ ہی۔ بھلا ایں میں (اس کامناؤں روپی) ملارج کو بھوڑہ ساگر سے ناپار نے جانے کے لئے اجرت۔ کہاں سے لاگر نے دوں گی؟

پکر مالا۔ جو ہمیشہ دیکن ہیں مبھی والا درجھل من سے ٹھیکھت ہتا ہے۔ اُس کا میدریاں اسادوان۔ سارچی اور دوشت گھوڑوں کی

بعانیت دش میں ڈر رہتے والی ہو جاتی ہیں (کہہ اپنہ اپنہ لے ۔۔۔)
آیا تھا اس کام کو تو سو بار چادر تان
سرت سنبھال اب غافل اپنا کپ پہچان
کیا کیوں ہم آئے کے کیا کریں کے جائے
ات کے یعنی مذاقت کے چل بھئے مول گلائے (کبیر)

ا سس کوئی نہ سانپس سیٹھا۔

نر دیک اسست گلمس دوڑ

نہ ظاہر نا یاطن کو توی دیونہم

گئم کھت چت روہ ترا پور

(کے)
یہی دہی ایک (آتم سردی) تھی۔ پھر انیک ہو گئی۔ نر دیک ہو کر
بھی دوڑ چلی گئی (کیونکہ) نہ تو ہم نے ظاہر اور نا ہی میلتے یاطن۔ اک
ہی (بہم) کو دیکھا (یہی کیسے بھئے چون پور کھاپی کو چل گئے۔
و یا کھیا۔ یہی ازل سے آہ نوں کاریں سے دہی دیک آتم سردی تھی۔

مگر ہیاں سمار میں سب پرانیوں کو پر تھک پر تھک جان کر ایک سے
ایک ہو گئی۔ آتا کے نر دیک ہم نے پر پھر میں بہت ہی دوڑ تھی۔ گئی۔
(اس کیسے کر) نہ تو ہم نے ظاہر اتفاقات درشتان جگت کے سب پرانیوں
میں پر مانگا کو (ورنا ہی میں نہ یاطن۔ اتفاقات دوہت کے سب پرانیوں
سب پرانیوں کو ایکتا سے جان کر دیکھا۔ اس طرح کے اگیان سے میری
آتم سنا اور لشکھے آتمک ڈھنی۔ یہ سب کچھ میری سمتا پوچن پور کھا
پی کر چلے گئے۔

پرمان۔ پیدہ اس منش شریہ میں سب کے بیت پر سخت آتا کو جان
لیا۔ تو بہت کشل ہے۔ پیدہ اس منش شریہ کے رہتے رہتے نہیں
جان پایا۔ تو دناش ہے۔ پیغمبان پریش سب پر انیوں میں سخت
ایک ہی پر بہم پر شو قم کو سمجھ کر بس لوک سے مرنے کے بعد امر مو
جانتے (لئن اپنہ لے ۔۔۔)

(و چار) اب ہم ان چوپن پوروں کا وچار کریں گے۔ اوہکت پر کرتی
سے تیس توت اپن ہوتے ہیں وہ یہ ہیں۔ پارچ ہما بھوت اہنگار۔ ڈھنی۔
پارچ کرم یہد بیا۔ پارچ گیان یہد بیا۔ ایک من اور پارچ یہد بیہ گو پر
جب کوئی منش سر جاتا ہے تو وہ پارچ ہما بھوت ہے تاک شریہ کا سلکھات
ہیاں ہی چھوڑ کر میرنیوں کے سمتے پر پر کرتے کے باقی اٹھارہ سو کشم توت
(ور دھرم۔ اور کرم اور کرم کو جھو آتا ہے ساتھ آکر شکر کے باقی اٹھارہ سو کشم توت
کے) (ور جب یہ جھو جنم لیکر تیا سھول شریہ پاٹھے تو یہ جھو پان ہی
سب تولی کو اپنے ساتھ آکر شکر کے لے آتا ہے۔ اسی کا تام سو کشم شریہ
ہے اور جب تک جھو کو سرو آتم گیان کی پڑا سی نہیں ہوتی تب تک
اسی سو کشم شریہ کے کارن سے ہی اس کو نئے نئے جنم لیتے ہیں
یہ سانچھیہ شاہست اور ویدانت کا ورن ہے۔ یا شریی نے اور یہکت دھرم
اور کرم سہت بھوکشم شریہ کے اٹھارہ تقویں میں رہتے والے
جھو آتا کو۔ پر کرتے کے سوت۔ روح اور تم ان تقویں کوں کے پر ورث
سلک سے یاندھے جانے پر اسی کو 3×18 مادی چون پور ورث
کی ہیں۔ اتفاقات ستونگ کے پر ورث سلک کے سمتے پر یہ اٹھارہ سو کشم
تقویں میں رہتے والا جھو آتا سوت گن سوچا و میں ورثا رہتا رہتا ہے۔ اور

رجوگن کے سمنے پر آگ آتیک اور جوگن کے سمنے پر اگیان اور موڑ اور تامستی سوبھا دکا ہو جاتا ہے۔ یہ آپ کو گیتا ادھیا ۱۱ دا کھید ۵ سیکر ۲۱ تک اچھی طرح دچاریے پر سمجھ آجائے گا (اس کا پرمان) ہی ارجن پر کرتے سے اپن ہوتے ہے ست۔ رج اور تم یہ تین گن دیہرہ میں رہتے والے بڑا کا دکھتا کو دیہرہ میں باندھ لیتے ہیں۔ ال گنوں میں سے نر ملٹا کے کارن پر کاشن ڈالنے والا بردش سنت گن (میں سکھی ہوں۔ میں ڈوڈاں ہوں ایسا دھ) تکھد اور اگیان تے ساٹھ پرانی کو باندھتا ہے۔ رجگن کا سوبھا دو راک آتک ہے اس سے ترشنا اور آنکتی کی اوقیان ہوتے ہے۔ وہ پرانی کو کرم کرنے کے پر درست رقب سنگ سے باندھ ڈالتا ہے۔ کنتو تونگن اگیان سے اوپجاتا ہے یہ سب پرانیوں کو ہوہ میں ڈال کر پر ماڈ آئیں اور تندرا سے پرانی کو باندھ لیتا ہے (گیتا ۵-۸) ادھیا کے پہلی دیکھ ۵ میں اسی سوکشم شریک کا درجن کیا اس اور کیاں پھول کے درشتانٹ میں ایشوری نے وہنیں کیا ہے۔

پریشید سے
پرانا تھا
شاہمہ گلاؤہ و ان لومھس چھو
سیند

پہنیوئی بنا چھید ڑہ تہ مہر
ڑہ شرن سوامی بہ شیہہ موش (۸)

جو پر چھد آپ میں ہیں دمی پچھ میرے میں بھی ہیں۔ ہی نیلہ کنھ آپ سے بن (جانسے پر) لعفیان اور گھٹا، ہی ہے۔ تم اور جھن میں ہی ایک بھیاد بھاؤ ہے کرم ان چھب کے سوامی ہو اور جھن ان چھن دس یا۔

دیا کھیا۔ ای پرمیشور۔ جو چھمن اور پارچ گیان یندیاں آپ میں ہیں وہی چھمیرے میں بھی ہیں ہی (اس کا رصوف میرے لیتھن دو) ای پرمیشور نیلہ کنھ۔ دیو۔ نندھر۔ لیٹھ۔ گھٹا۔ ایسا دھ جیون داروں کو آپ سے بن ارھات پر تھک پر تھک جانسے پر میرے کو ایکتا کے (بھو جو نے میں بھت لعفیان اور گھٹا ہے۔ یہی تو بڑا بھادی بھید بھاؤ تم اور جھم میں ہے کرم ان چھکے سوامی ہو اور جھن ان چھن دیہرہ رُدی کامنا کے دلخیہ دکاروں نے آدگن جنم دھرن میں دس کر جھٹکا یا (نوف) یہ واکیہ ساکار رصوف پرمیشور کے درشتانٹ میں دے کر ایشوری ہے۔ درجن کیلئے کیوں کہ نہ کامان اور کھت پرمیشور کو یہ یندیوں کے گن لاگو ہیں (ہو سکتے)۔

پرمان بھی میں کے سہت پاچھوں گیان یندیاں بھیلی بھانڈ سپتھر ہو جاتی ہیں اور بُدھی بھی کسی پر کار کی جھٹھٹا نہیں کرتی۔ اس سختت کو جو گی پرم جھنیت ہے ہیں (کٹھ اپنیش دیتے ہیں)

پاچھوں سے من یندھیا پھر پھر دھرے خرے
جو یہ پاچھوں بس کرے سوئی لائے۔ قیر (کیمرا)

سیند ناکھ نا یان نا پر زو نم
سد ای بُو قم ایکوئی دیہرہ
ٹرہ پیو یہ ٹرہ میکوں نا زو نم
ڑہ کھس بُو کو تھے چھو سندھیہ (۹)

لئی سخنی پڑا توں (میں آپ پرینشور) کو ریکارڈ سے چانا۔ پرینشے سے ہی اپنے اس ایک ہی شرپر شکو درشت میں رکھا۔ تم ہمیں میں اور میں ہی تم (ارتحات سخنی پرینشور میں ایک ہی پرینشور) کا ملاب کرنا نہیں چانا۔ ہی تو یہاں ملابی سندھہ ہے کہ تم کوئی اور میں کون ہی۔

یہاں پر شرکے انھوں میں پرینشور کو بھلی بھانٹ جانے والے ادستھا میں ایک ارتحات پرینشور کا ریزتر ساکھت کرنے والے ہمایش سکتے کون سا شوک اور کون سا مودہ رہ جاتے ہے اُس وقت وہ ہمایش پر نہیں سے پڑھ پڑن ہو جاتا ہے (ایش اپنند۔ ۷)

سخنی: ہناریڈ بُرس آٹھ گنڈا ڈول گوم
ڈل کارہل گوم ہنکہ گوہ ہمہ
گوہ ہنڈر ون راؤن ٹول ٹووم (۱۰)

پرینشے کو سوتھیوں کو ہمیں کوہ رام ۵۸
دکن کارٹھا ہو گئی ہیں پرینشے کا تھا دھیلی ہو گئی اور میرا
روپنا) نہر یا پوتوں پر لے لیا اور غیر اور کارہنڈا اسکار
کس طرح اٹھا سکیں کی۔

ویا کھیا۔ میرے کھدے سوچر کا کچھ سوچا۔ پرینشے کے اپا استا
روپی بیات والی بھجھکی کا ٹھہر دھیلی ہر کسی اور شہری اسی اس بیجھ کے
پیچے سہاٹا نکھے والی لادھ کا ارتحات من کا دروازہ نیکھے والا دیگر کا

ڈنڑا طیڑھا ہو گا۔ بھلااب یہ بوجھ میں کسی طرح اٹھا سکوں گا (یہ کیوں ہو گی) جس کہ اہنکار اور گھنڈ کے گور و چمارچ کا اپیلش شید میرے من اور اپنے کروں میں نہر یا پھوٹا بن کر پڑ گیا اور پھر یہ میرا ریوڑ۔ ارتحات چھل من سے نیکھت بندریوں کا ریوڑ۔ دش میں مراہنے والے (اسا دان سارچی کے چھانپے) بیغڑا گدیا کے ہو گیا۔ بھلاب تاڈ اب میں یہ بوجھ کس طرح اٹھا سکوں گی۔

پرمان گیانی جن اس پر مار تھے مارگ میں بندریوں کو گھوڑے اور دشیوں کو اُن گھوڑوں کے وچھے کے مارگ بتلاتے ہیں تھا شرپر بندری اور اس اس سبک ساقہ رہنے والا جھوٹا نہیں بھوکھتے ایسا کہتے ہیں۔ جو سدا دیکھیں بیٹن بڈھی والا اور چھل میں سے نیکھت پہنچے ہمیں کی بندریاں اس اس دان سارچی کے دو شنک تھوڑوں کی چھانپے وش میں نہ رہنے والی ہو جاتی ہیں (کٹھا اپنند ۱۳۳-۵)

سخنی: پچھوہ ہار سچھ پر شی کان گوم
ایک پھالا چیم سچھ را فردا کے
منز باگ پاڑوں کی طفہ رام۔ درلن گوم
تیر تھہ رہست پان گوم کس مالہ زانے
اسا تھرے کمزور نکری کے دھنی میں پیچھی کا بان ہو گی۔ اور اس میرے
راہی دانی میں دیکھیں پیچھی والا نا تھر بکار تھر کھان پڑا۔ بیڑا کے
پیٹا میرا دان تا سبکے لغیر ہو گی۔ میرا شرپر تیر تھر سے رہت ہو گی۔ تا اس
کوں جافتھا تھا۔

دیا کھلنا۔ اسی بیرے دو یوک ہیں بُدھی دا سے کمزور مکڑی کے دھنشن
بیلی یہ میرا (اپاسنا کا) بان پڑتی کا زگھاس جس کی چھانی بناتے ہیں
چوگیا (بھلا یہ کیوں ہوگی) جب کہ یہ بیٹوں آناروپی دو یوک ہیں بُدھی
کا ترکھان انتخاب اپنا ہی آپ اس خریب روپی راجہ دانی سُدھارنے میں
لگا۔ اس لئے چھل من سے بیکھت بندیوں کے دش میں نہ رہتے پر ماسے
بازار کے بیچ میں راجہ دانی میں بیٹوں اگھدہ دانی کا روکان۔ دن اور
مون کرنے کے تالے کے بغیر ہو گیا اور اس کے ساتھ ہی یہ میرا شر بر
تھر تھر ہیں انتخاب ادھیا تم گیاں اور دیدا سے رہشت ہو گی۔ تات (ایسی)
دُھمکی کی حالت ہو جانے کی) کون جانتا تھا۔ بھاڑی یہ سے جس وقت کہ
یوگی کی یوگ بُدھی ہو جانے پر گیاں درٹھی کھل جاتے ہیں۔ مورکھ
اور بیٹیں یوگی مان اور بڑھاتی ہو جو بنے پر کراماتیں کرنے لگا ہے
(انتخابات اس اپنے شر بر روپی راجہ دانی کے مکاح کو مون روپی تالا ہیں
لگاتا) اسی طرح آہستہ آہستہ اپنا سارا یوگ بل شرچ کسکے کھو بیٹھتا
ہے اور پھر اپنے یوگ مارگ سے نیچے گر جانے پر وہ ادھیا تم گیاں
سے رہت اور دیدا ہیں بن جاتے ہیں۔ دچار میں آتھے یہ دو تین
دُکھ دیشوری کے نیکوں کو سمجھانے کے لئے درمن کئے ہیں۔

پرمان۔ اپنیشید میں درمن دھیان یوگ کا درمن۔ پرمن روپ
ہماں اسخر دھنشن کو لے کر اسی پر کشچیے دریھتا کے اپاسنا کا تکھن
کیا ہوا بان پڑھلتے۔ بھاڑی پورن چت کے دواڑا اس بان کو رنج
تعق کر رہی پیاسے اس پرم اگھر پر بہم کو لکھیے مان کر بید دے۔
ادم ساری دھنشن ہے۔ اپنا آنما ہی بالہتے۔ پر بہم پر میشور ہی

اُدھیا نے۔ ۴۹
اُس کا تکھیہ کہا جاتا ہے۔ پرماد سے یہ ست میش دوارا ہی پہ بیدا
جانے یوگی ہے اور اسے بیدا کر بان کی طرح اس تکھیہ پر ماتما میں
تن میٹھے ہو جانا چاہیتے (منڈوک اپنیشاد ۲-۴-۳)

سُدھر پہ کیا ہے سُدھر پہ کیوں زنگ گوم
بیے زنگ کرتے گوم لگہ لکھہ شاٹھے
تالو راز دا بہ آپک پھان پھوم
جان گوم زوئم بان پھوٹھی (۱۲)

دیکھو یہ (زروکار آننا) کیا شو بھیا مان ہوتے ہے مگر مجھے یہ کیا
(اٹھ) زنگ ہو گیا۔ یہ تو اپنا ہی بے زنگ (آنار دویت بھلے کا منگ)
کر کے چلا گیا۔ اب میں (اس بھوہ سر کے) بکس شاٹھ پر زنگ جاؤں گی۔ اس
میرے راجہ دانی کے اور سیلگ لگان کے لئے وویک ہیں بُدھی۔ والا
نا تھر پر کار ترکھان پڑا۔ یہ بھا اچھا ہی ہوا کہ میں نے اپنے آپ کو دیگان دچار
سے جان کر سمجھ لیا۔

ویاکھیا۔ دیکھو یہ نر دکار آننا نیکہ شاہوت اور اسچریہ میئے دستو
کے نیکہ کیا شو بھیا مان ہوتے ہے مجھے یہ کیا اُنار زنگ ہو گی۔ یہ تو
پیٹھے اپنا ہی بے زنگ آنار دویت بھاؤ کا زنگ پڑھا کر کے چھپ کر چلا
گیا۔ بھلا اب میں اس سنار سدر میں پڑی ہوئی تر شناڑ روپی مگر مجھ سے
پکڑی ہوئی بھنروں سے دھکے کھاتی ہوئی نہ معلوم اس سُدھر کے کس
شاٹھ (ریتلے کنارے) پر جا گوں گی (بھنا یہ کیوں ہو گیا) جب کہ بنا تھر بے کار
مورکھ یہڑ آنار روپی دو یوک ہیں بُدھی کا مز کھان انتخاب اپنا ہی آپ۔ اس

مشتری ریپی نیز ہدایتی کی سیلیگات (یعنی اپنے والا چھت) ارتھات۔ اس مشتری شری ریپی پر مشتری کی راہیدی دادی شدھانے میں لگا۔ یہ بھی اچھا ہی ہوا کہ میلانے اپنے آخر مرقوپ کو وگان و چار سے جان کر بھانڈا۔

مسند بلہنیں رقیبی کے میلان رکھنے کوہ توڑا جن

پس شاہزادی ہنتر کرنے توڑا مولہ دا جن

کارون اندر مگاہ پبلہ میلر پیوس

(۱۲) اگر کسی ملش کو (یوگ سدھی کی) چدگاڑی میں کر پڑی تو کیوں اس نے سرداشت نہ کیا ارتھات دمیں اور اون کرنے کیوں نہ بیٹھا۔ کیوں اس کو وس بوج سنتی کام سردار نے نائیوں میں چلا گیا۔ میں نے تو شافت مرقوپ بیگیوں کے کریا مارگ کا تویلہ اور ہوں ہی گھٹا دیا جنکہ اس کے اندر کا یوگ پر کاش باہر بھٹک کر نکل پڑا۔ رفاقت کرایاں کر کے سب کچھ خروج کر بڑا لایا۔

بکھالا۔ دکن کرنے والوں کا ڈنڈا ارتھات دن کرنے کی شکنی میں ہوں۔ وجہے چاہتے والوں کا نیکے میں ہوں گپت رکھنے ملکیہ بھاڑیں میں ہوں میں ہوں اور بیگان داؤں کا بیگان میں ہوں (گینا ہے۔)

مسند سکا مٹلا آک دچھم بوجھہ سیتی مران
پن زانا هر ان پلوہ نے دادہ لہہ

لش بیڈھاک دچھم دا زس ماران
تتریل یو پر اران شریم ہے پڑا۔ (۱۲)
(ایسے آپ کو بیہمان مانتے والا) لیک ددوان کو بیڑنے یوہ ہیئے
میں ہو کے معمول پر شر کئنے پر درجنوں سے پتے کر کے میان دو شیر
و استاروپی) ایک بھوک سے مرتے دیکھا اور ایسا ہی ایک (جاندے بوجھ کر
بنا ہوا) مورکھ کو میں نے اپنے (کامناروپی من کے) باوجھی کو مارتے
پتے دیکھا۔ اس دن سے میں ایسی بھتھ کے پرکھ لئنے اور ارتھات جان
لئنے) کے انتظار میں پڑا ہوں تین اچھا نکس بھرے من کے بیڑ پڑا ہوا
وہ پڑا ارتھات پر شر دو نہیں ہوا۔

کینشن دیوچھم اورے آلو
کینشن روٹی نالے ویٹھ
کینشن میں چھتھ اچھ لیجھ نالو
کینشن پیت گے ہا لو یکھت

(۱۳) کہیوں کو تو ادھر سے ہی آزاد ماری دے کہیوں نے (و تھے) دریا
کے گلے تک پکڑے ہی رکھا کہیوں کو یوگ کا میں پی کر اٹھیں اور پر کرے
اور لگ گئیں (۱۴) کہیوں کی بھتھی پک کر نمڑی دل بھائی۔

دیا کھیا۔ ہی سماں نہ دیو کہیوں کو تو آپ نے ادھر سے ہی ارتھات آئی
کے پڑا بھاس کے یوگ بلے سے ہی آزاد ماری۔ وہ تو بھر بھی یوگ مارگ کے
طرف ہی بچھے گئے اور کہوں نے ترکڑ دیشیک سوڑک آدھ کا مذاوی کے دید
خاتر دل کے ساگر دل کئنے تک پکڑے ہی رکھا۔ ارتھات سوڑگ آدھ مسکھ

پر اپستی کے کامندا ایے دیدشا ستر پڑھتے اور نیکھتے ہے) اور کہیوں نے پر مارھدا یوگ مس پی کر آن کی آنکھیں اور پر کی (اور گیان روپی نیشوری سے پریشور کے سرو و پیکھا ہاچھتا دیکھنے کے طرف پی گئیں اور کہیوں کی یوگ روپی کیستی پکنے پر ملش روپی ٹڑھی دل کھاپی کر جائے۔ ارتھاں کہ اپاں سر کے ایندر ساری یوگ کی تھی ہر یوگ کا اپا اسی تحریج کر ڈالا۔

پرمان (۱۸/۱۰/۱۹۴۷ء) کو پڑھ کر دیوار کریں۔ رہی ایسا ارجمند ویدوں کے ترکیب دیشیک کرم کانٹک کے پھل شریعتیکھست، وائیوں میں پھر لے ہوئے اور یہ کہتے والے مورکھ لوگ کلاس کے سواہی دوسرا (گرم) اور پچھے بھی نہیں ہے۔ بڑا۔ بڑا کر کہا کرتے ہیں کہ انیک پرکار کے سماں کر مول سے ہی فخر جنم روپی پھل ملتا ہے۔ سورگ تاہ ملکھ کے پیچے ہی پڑتے ہوئے فرے کا مناکے بُھی والے لوگ بھوگ کر، وہ ایشوریہ میں ہی روپے رہتے ہیں۔ اس کارن سے ان کی نیچے انہیں بُھی سماہہ یوگ کے طرف نہ پھر کر سکھ رہیں رہتی۔ اسی کو ایشوری نے نالے و تھہ کہا ہے اور اسی کو شرود تر ساگر کہتے ہیں (گیتا ۲/۱۰/۱۹۴۷ء) اور دیکھتے رہنا (گیتا ۲۹/۱۹۴۷ء) کے اندر پڑھ کر دیوار کریں۔

کنه په چهوئی نهند ره هنچی و دی
کینشان دُلَن نسر پهیئی
کنه په چهوئی سخان کرت ایوچی
کنه په چهوئی گرمه نهنت ت اکری

لئے پھر یہی کر دہ بہت نہ اکری (۱۶) کہیں جلن شیل میش ندر ال جیسے بن کر پر ماہ تھما رگ کے جاگرت میں بیٹھے

بیں اور کہیں ہوشیار وید شاستر جانئے والے بیڈھیاں کو (کامناؤں میں پڑا کروں پر بار تھکی طرف) گھری بیند پڑیا پے اور کہیں تیر تھکا تیادہ سناں کر کے بھی اندر سے آپو بھرہ ہیں اور کہیں گھست آشتم کے دندے کر کے بھی (یا میں مکمل کی طرح) کرمول کے شجھ اور اشپھ بندھنوں سے فریب ہی ہیں۔

سیند
کنڈیو گر ھد پیزہ کنڈیو دلواس
ریخوی پھک تھے تیو تھی اس
مشیں دھیر رکھ سانپرک سو داس
کیا چھوی مل سو رتے ساس (۱۷)
کیوں نے تھر ہی بیاگے اور کہنے دلو اور خام سی نات تم جیسے ہو
یہیں بھی بنتے رہو گی میں میں درود لشچے دھارن کر اُسی سے تم کو دسوداں
پہنچا انتہا کے سانپ ملاب ہو گا۔ کس کر کے تم نے یہ راکھ اور مٹی ملنے ہے۔
دیا ہیں۔ کہن پریشون نے ادیا اور اگیاں ملے گھر اور گھست ہی
یا گاک دئے اور دلواس پلے گئے اور کیوں نے دلوس کو بھی بیاگ دیا۔ بی نات
بسا بھی پر اک تھے سو بھاؤ لشچے انتہا بُدھی اور شر دھا انتہا میں رہے دیسے
یہیں رہو گے۔ اپنے میں پر انتا کے سادھن کرنے میں درود لشچے اور
دھیر دھارن کر اُسی سے تم کو دسوداں (۱۸) اپنے سر دپ ارتھات انتہا
کے سانپ ملاب ہو گا۔ کس کر کے تم یہ گھر بیہ بیاگ اور دلواس کی گنڈی
کھد اور مٹی مل رہا ہے۔

پرمان)۔ ہی ارجن سب پر انیوں کی شرمندھا اُن کے ہا پہنچ ایسے پر اکرنے

نامم نامیں اور میر سالہ پر پہنچ اور نادھیان۔ آپ ہی آپ۔ سب کیا یہیں بھول گئیں۔ کہیوں نے اس آخر تتو کے طرف دیکھا کہ بھی نہیں وہ نہ اندھے ہی رہے اور سچے تھوڑے اسی پر متوکر دیکھ کر اسی کے ساتھ لئے ہوئے۔

دیا کھیا جس وقت کو لوگی کو سادھنا کرنے کو تھے تم اور میں۔ دھیان اور پہ سارا بیا کا پسارہ ہے مول گل جائے گا۔ انتھات سب دوست بھاڑ گل جائے گا یہ کہ پرمانند مسٹر پی ہی سید چکت بھاس آئے گا تو سمجھ لو کہ اس وقت آپ ہی آپ سب کریا یہیں بھول گئیں۔ کہیں پر شوں نے اس آخر تتو کے طرف دیکھا بھی نہیں۔ انتھات اس کا کے جانے کا وچار ہی نہیں کیا وہ تو اس آخر گیان سے اڑ چھے ہی ہے اور سوت پر شوں شانت آتھا اس پر مشور برہم تتو کو دیکھ کر بھی سکے ساتھ مل کر نے ہو گئے۔

سیند کو نیزے بوزک کو نہہ تو روزک
کو نیزک کو رغم ہائی کار
کنوئی است دوں ہند جنگ گوم
سوئی بے رنگ کو جم کرت رنگ (۲۰)

جن وقت کریم ایکا کو جان نے گا تو تم کہیں بھی نہیں ہے گا۔ اسی ایکا کے وچار کرنے نے مجھے ہائی کار کر دیا۔ وہ تو ایکا ہی سب میں استھت ہے مگر میرے بیتر دو کی ریاضی ہو رہی ہے۔ کیا کروں۔ وہی بے رنگ مجھے (دوست بھاڑ کا) رنگ کر کے چلا گی۔
دیا کھیا جس وقت کریم یوگ سندھی ہوئے پر سپورن پرانیوں اور

سوبھا و کے اور سارے ہمیں ہے ملش شر دھا مئے۔ جس کی جیسے شر دھا ہوتی ہے وہ سویم دیسا ہی ہر ناہے (گیتا ۲۴)

سیند کال زول یو دوئے ڈی گول
و نندو گہہ دا و نندو ڈنوس

زانست سرودہ گتھہ یر بھو انمول
بی تھوئی زانک ٹو تھوئی اس (۱۸)

لیدا (ڈی) دا سنا گل گئی تو قاضی سیئے نے کال کو جلا یا پھر تم
لوگ گرہست کو چاہو تو ٹھوین میں واس کرو۔ بر جان کر کر بھو سرودہ کتھہ
امول ہے جسما جا لو گے۔ دلے ہی سے رہو گی
و ماکھا۔ ید و اٹھتے کو سماں کی سادھنا کرنے کرنے سارے

د سنا یہیں گل گئیں تو جان تو کر ہی سیئے نے ہمارا کال ارکھاں چم و مرن
آدگن روپی پر اکر جن بندھن کو جلا یا اس سے پر قم لوگ گرہست میں
رہو۔ اسھوا اور ہیں ہیں ہکڑ رہو۔ بر جان کر کر بھو س کا سوائی دین دیاں
پر مشور نہ لانا آدھ سے رست سپورن بہماند میں دیا پک اور گتھہ کرنے
والا ہے۔ اس سے پر بھی جسما کا اس پر بھو پر برہم کو جان لو گے
ویسا ویسا ہی پرمانند روپ گیان میں مگن ہے رہو گے۔

ڑہ نا بُو نا دیسی گیا دھیان

گیئہ پائے سرودہ کرے مشت

زینا ڈیو ڈھاک رکھئے تا آنی
سچے سوت لئے پر پشت (۱۹)

لئی ستوری والئیز ریسی

پر ماہنا کو ایکنا سے جان لیکا اس وقت تم کہیں بھی نہیں ہے گا۔ ارتحات پر مامن سروپ ہی یہ سارا جگت بھاہس آئے گا۔ پھر تم دوسرا کون اور کہاں کا۔ ملھرا۔ اسی ایکنا کے سوچنے نجیبے ہائی اکار کے چھوڑ دیا ۵۰ پر ماہنا تو ایکلا ہی سب میں سختہ ہے مگر میرے میں دوست بھاڑ کی لڑائی ہوئی ہے۔ کیا کروں وہی بے رنگ اپنا ہی آنماگھے میاںے رنگ کر ددیت بھاؤ کا رنگ کر کے چھپ گیا۔

پر ماہن۔ جس وقت کہ بیگن کو پدار تھے میان کے ہو جاتا ہے اور داش طما (ارتحات پر ماہنا کو ہی ایکوٹ سے دیکھنے والا) درشنا پن کے روپ میں نہیں رہتا یہ کردہ بھی سویم بیہم میں لین ہو جاتا ہے تب میں پن کا ناٹش ہو جاتا ہے اور میں پن کا ناٹش ہو جاتا ہے میں بھوک کا ناٹش ہے۔ اسی کارن سے اس ادستھا کو اپردا چھیے سادا ان ہٹکتے ہیں کیونکہ جب میں پکھ رہا ہی نہیں گی تو سادا ان کا درجن کر لیکا کون (داس بود ۱۴/۱۶)

بیگن سرچی یہ کیاہ اسست پہ کیوت رنگ گوم
ہو جانکا سنگ گوم ٹرٹت پلٹکنے دنگ
درجن سارنی پنک لٹوئی ملکن چووم۔

کلہ مہم ترگ گوم لکھ کمہ شانٹکے (۲۱)
دیکھو یہ (میرا زردار جیو آنما اب تک پر کرتے گنوں میں بندھا ہوا) کیسا سخت تھا۔ بھے اب یہ کیسا (شو بھاہیان) رنگ ہو گیا۔ دو تو میرے ہنرہ بھکھی کے چوچیں مارنے کا سنگ کاٹ کر چلا گی۔ اور میں پر دل کو ایک ہی توکھ بن کر پڑا۔ اور جھوٹل کے بیڑ ترگ ہو گی۔ اب میں

لئی ستوری والئیز ریسی

کس شاٹھ پر لگ جاؤں گی۔

ویاکھا۔ دیکھو یہ میرا زردار جیو آنما بیتہ شاٹھت ہونے پر بھی دیشیہ اسکتھ کے کارن پر کرتے گنوں میں بندھا ہوا اب تک اگن اندرھکار کے بیڑ کیسا سختہ تھا۔ اب جھٹے ہے یہ ایکنا کا کیسا شو بھاہیان رنگ ہو گی (اں) آپ ہی اسی میرے پرستور (انٹر آنما) نے میرے پہنچ پکھی ارتحات جیو آنما کے کرم روپی پھلوں کو چوچیں مارنے کے سنگ کو کاٹ دیا۔ ایسا بھاؤ پونے پر میرے کو مامنے دید شر و یوں سکے پر دل کا ایک ہی اوم روپ دھھ دلخیم) بن کر پڑا اور جھوٹل کے ہر دستے میں سب ہی کھڑھ سما جائے والا (ترگ ارتحات) ٹھنڈا من امرت سے بھرے ہوئے گندھ کے سماں ہو گیا۔ اب میں کس (شاٹھ) سختان پر لگ جاؤں گی۔

پر ماہن۔ (ہنرہ بھکھی کا) ایک سا تھیتھے دلتھا پر پسٹر سو بھاؤ رکھتے دلتے روپیتھی (جیو آنما اور پر ماہنا) یہی ہی درکھ دشیر (کا اسٹری ہے کرہتے ہیں۔ اگ دلوں میں سے ایک پکھی (جیو آنما ارتحات ہنرہ) اس شریرو پر روپی درکھ کے کرم روپی پھلوں کو سادھلے لے کر اپہ بھوگ کرنا رہتا ہے۔ کنٹوں دوسرا پکھی (پر ماہنا) کچھ بھی نہ کھانا ہوا کیوں دیکھتا ہی بھلکتے اور سمجھت شریرو روپ سماں درکھ پر میٹے والا جیو آنما۔ شریرو کی گھری اسستی میں دد بنا۔ پہلے اسکم تھر دینتا کا انھوں کرتا ہوا اس نار کے موجہ میں مہنت ہو کر شوک کرتا رہتا ہے جب کیھی پرستور کی دیا سے بھکھتی کے دوار پر مسٹر کو اور اگن کی گھما کو پر بھٹ کر لیا ہے تب سب کرم پھلوں کے چوچیں مارنے اور شوک موجہ سے رہمت ہو جاتا ہے (منڈوک پیشہ ۲-۱)

مرجعیت پڑھائے تیار میں
جی نہیں ہر دم خراز بیار میں

(ریٹلی قلدر)

وہاں سے پردوں کا پہاں) ہی ایجن بج تیری انہیں پر کار کے دید
اور شاستر دل کے سدا نتوں کے سنتے سے وچلت ہوئی پڑھی پر ماننا کے
سرشوب میں ہمیں اپنی اپنی اور سفر ہو کر ٹھہر جائے گی تب یہ ستم بیڈھ رُپ بیوگ
تجھے پر اپت ہو گا (گل ۲۷) (تراک ارتحات امرت کند) چاروں اور
سے پانی آجائے پر جس طرح سبُر رکھت مانز بھی نہ بڑھتا سے نہ گھستا سے

نہ چلا یہاں ہوتا سے اور نہ اپنی مربا را چھوڑتا سے اُسی پر کار جس سر شش
میں سا رے دُستے کوئی بھی دکار ملنی نہ کر کے اُس کی شانستی بھنگ کی
بناری اپنے پلتر سما جائے ہیں اسی کے پر جم شانستی پر اپت ہوئی ہے وہیوں
کے کامنا و ایسے کوہیں رکت ۲۷) گیانی کا ھنڈا من امروٹ بھرے
کنڈ کے سماں نہ لاحکا رہھلا نہی سے نہ اپنی کا سوچ کرنا ہے دشمنی
اسٹھما و کر گل ۲۸)

نگل کا بی پر جھٹی جھٹھن گز جھان ستسی
کامیشے کامیشہ سر دشمن میوں
کو جھان کو جھان کو جھان پت اسی
ویلشک دو رسیے درمن جمل ۲۹
سینا کی لوگ پر ایک تیر تھک کے اُپر پر ماننا کا ملاب ارتحات موشہ
کے الجھلا شا سے جایا کرتے ہیں۔ ہمیں یہے چیت (اس ادھیانہ ویدا کے
ٹارگ کو پر جھک کر اور جان کو روان تیر قیوں کے پیل خروجہ و بیوی میں)

لشیت نہ ہو بھٹک نہ جا (اس آخر سادھنا کے تلیہ میں یہ تیر قدم اسے ہیں
جس لکھا کر) نہ دوڑتے پر تھوڑی پر چھٹے ہوئے بیزہ زار بہت بیلے (گھرے
اور خوش بنا) دیکھ لوگے۔

پرانا۔ گھکا تیر جو گھر کرنے پرے نہیں نہیں تیر
بن ہری ملن ملکیت نہیں کہے کجھ داس بکیر (کبیر)

نہ تھو یہ نہ راتی منگنے
مہر راون صراح کرم کاہ
کار دھنا
بے گوم لیکھت تھے سو ماں تھرم
کرم شہ کرم کاہ (۲۳)

تھی ناٹھ پر شور میں رانی بینا میں مانگوں گی۔ تھے راون کا راج
کی کرے گا۔ جو جھم جھی میرے کو لکھا کی وہ طل ہیں ساتا۔ لیکھا۔ لیکھا۔ نہ
پھر لیکھا۔

و ماکھا۔ سما میرے ناٹھ پر کرم پر مشور میں اپسے راج راتی جی
پر دوی ہیں مانگوں گی۔ مجھے یہ راون کا جھتنا ناٹھران و میاں راج کی
لائھ کرے گا۔ جو جھم جھی میرے ماٹھے پر کرم یہ کا اٹو لئے لا جھ لکھا گا ہے
وہ تو کبھی طل ہیں میں سکتا (۱) تو کیا ایسے راون کے دشائی اور تاھروں راج
لکھ سے یہ ادا من جنم قمرن بکش طل سکے گا ارتحات ہیں طل سکتا
(۲) تو کیا ایسے راون کے راج سے ادھمک۔ ادھوں کا ادھوں یہ تیغوں
سدار کے تاپ میں شے گا۔ ارتحات ہیں طل سکتا (یہ ہمیں تھر قدم اسے
اپ ہی بیڑا تو کوں سا شوک اور نمودہ طل سکتا ہے مجھے ہر سب مجھ زینج ملک

ایسا دو نہیں چاہئے اپنے بھی پاسا رہتے دو۔
(سمواں) رس و ایک کا پہنچنے کے لئے پہلے ہم پچھے کیتے اور یہ راج کا سواد لکھتے ہیں۔ وہنیں سال عمر کا بالا ک بچہ کیتے اپنے باپ اور الک رشی کے شاپ دیتے پر اسی دہر سے یہ پڑی میں چاہا ہے۔ یہ راج گھر پر ہم نے کی وجہ سے پچھے کیتے تین دن تک بھوکا یہ راج کے گھر پر رہتا ہے۔ یہ راج کے پچھے پتیسرے دن یہ راج پچھے کیتے کو تیجوی بہن جان کر اگر پاد دیکھ پوچا کرتے ہے۔ اور تین دن بھوکا رہنے کے بعد میں وہ مانگ کے لئے پچھے کیتے ہیں۔ پچھے کیتے یہ راج کہتے ہیں۔ وہ پاکتیسرہ دو آتم گیان کے اپدیش کرنے کا مانگتا ہے۔

پہنچان۔ یہ راج نیکرے وہ آتم گیان کے بد کہتے ہیں کہ ہی پچھے کیتے سینکڑوں درجنوں کی آیو ولے ہیطے اور پرتوں کو اور بہت سے گھو اور شوش کو ہاتھی۔ گھوڑے اور سونا مانگ لو۔ پر تھوی کے بڑے چکر ورنی راجہ یعنی کو مانگ لو اور تم صحیم بھی چلتے درجنوں تک چاہو جلتے ہو۔ ہی پچھے کیتے دن کھتی اور انشت کاں تکھنے ہیتے کی سادھنوں کو میدے تم اس آتم گیان کے بھان وہ مانستے ہو۔ تو مانگ لو اور تم اس پر تھوی توک میں بڑے بھاری سمراث بن جاؤ تھیں سپورن بھوگوں میں سے آتا آتم بھوگوں کو بھجو گئے والا بنا دیتا ہوں جو بھوگ عشق توک میں دُریں ہیں اُن سپورن بھوگوں کو رینی اچھی کے اوسار مانگ لو۔ رنگ اور ناتا پر کارکے با جوں کے سہت ان شوگ کی اپسراوں کو اپنے ساتھ لے جاؤ تھنوں کو ایسی اسٹریں بلطف ہوت ہے۔ ہی دُریں ہیں میرے دوارا دئے ہوئے ان اسٹریں سے تم اپنی سیوا کراؤ۔ ہی پچھے کیتے مرنے کے بعد آتا کیا ہوتا ہے۔ اس آتم گیان کی بات

کوہت پوچھو جوچ کیتے والیں کہتے ہیں کہی یہ راج جن کا آپ نے اور ان کیا ہے۔ وے سب تاشوان بھوگ افزا کرن سہت سپورن بندروں کا جو یون ہے اُس کو کھیٹ کر ڈالتے ہیں۔ اُس کے سوا سارے آبیوچاہے وہ کہتی ہی بڑی کیوں نہ ہو۔ آپ ہی ہے۔ اس لئے یہ آپ کے زندہ ایسا دو دہن اور یہ اپسراوں کے ناخ گانے آپ کے اسی ہی رہیں جوچے ہیں چاہے جوچے تو دہی آتم گیان پر مردی کا درچالیہ ہے جوگ یہ شوری نہ ہیں باہت اس دُرکی میں سمجھا ہی ہے کہ دیکھو یہ آتم گیان کتنا دُریب ہے۔ اس کے پچھے ادھیا نے ۲۔ و اکر ۲۳ سورگ جامنہ کا پہنچان بھی یہ ڈھنا و خارفیہ ہے۔

۴ رکھا اپنہد ساٹا ۲۴۳

چو تھا ادھیارے

لَا چارہ بُچارہ پُر واد کو رُم
تُبڑہ چھوہ ہے ہمیو مل
قیرت دوبارہ جان رکاہ دُنم
پُر ان ہے روہن رہیو ما (۱)

جھوٹے کس بچاری نے (پُر داد کو رُم) لوگوں میں بہت سارے آوازیں کر رہے تھے جیسے تھہر لئے والا (ندر) ناپانڈا نام کی بیڑی ہے اسے خرید لو (ایسا ہی گھومتے گھومتے) پشچاٹ اس داشتے سے بھر کر دوسرے بار میرنے کیا، ہی اچھا کہا۔ یہ کہ پُر ان اور تُدہن کو خرید لو۔

ویا کھیا۔ جھوٹ لَا چارہ ارتحات اشتر تھا اور دینت کا انجھو کرنے والی پیاری نے لوگوں میں بہت سارے آوازیں مایوس کر رہے سب سارے دیا ریخت۔ اُنہیں ناشوان۔ سوپن کی دستوں گندروںگر اور مرگ ترشنا کے جل کے حان ر (ندر) کل تک بھی دہمنے والا ہا پانڈا ہے اسے خرید لو۔ پشچاٹ اس داشتے سے پھر کر ارتحات سب سارے کامناؤں کو تیاگ کر دوسرے بار میں نے کیا ہی مُسندروں ویں کہا کہ پُر ان اور (رُقمن) دوسرے پُر ان دویوں کے بھن بھن بھیدوں کو خرید لو۔ ارتحات پُر انوں کے رہسیہ کو جان کر ان کا بسیوں کرلو۔

پیر مال۔ شریہ بیویں رہنے والا پُر ش (جیو اپنا) اگری آسکتی میں ڈوبیا جو لا چار اشتر تھا ہونے کے کارن دیتا پورک ہو رہت ہوا شوک کرتا

ہر ہاپے جب کبھی بھکتی سے اپا سنا دواڑا پُر میشور کو اور اُس کی آشپریہ ملے ہما کو پر تھک دیکھ لیتا ہے تو سروہ تا شوک سے رہت ہو جاتا ہے (شویتا شتر اپنند ہے) پُر ان کو مٹو کھیہ پران کہتے ہیں اور وہن کو رُپان۔ رُپان اور اُدالن جاؤ (پُر ان کے اپنے ہونے کو آگے سخان اور ویا پیکتا کو تھما ادا نمک پانچ بھیدوں کو اچھی پر کار جان کر مگش امرت کا افجھو کرتا ہے (پر خسن اپنند ہے) ان پانچ پُر انوں کی کتنی کو پرشن اپنند ۳ میں دیکھیں اور پُر انوں کے ہن بن بھیدوں کو اگلے داکہ ۶ کے پُر ان کو پڑھیں۔

پُر ان تھے روہن گنوی زوہم
پُر ان بُزت نیہ نا سد
پُر ان بُزت کنہہ تنا کھڑے
تھے لو جم سو اہم سد (۲)

میڈنے پُر ان اور روہن کو ایک ہی جان لیا۔ پُر انوں کے نیز و دھ کرنے پر مگش کیوں نہ (پیم پیدا کے) مارگ کو پراپت کر سکے گا۔ پُر انوں کے نیز و دھ کرنے پر کچھ بھی نہ کھانا۔ تب ہی۔ میں نے سوہم پر پر اتما کا مارگ پر اپت کی ویا کھیا۔ میں نے پُر ان اصلہ (مُن) ارتحات آپان۔ سماں۔ دیان اور اُدالن کو ایک ہی تتو جان لیا۔ ان پُر انوں کے رہسیہ کو جان کر ودہ پوروک پُر انوں کے نیز و دھ کرنے پر مگش کیوں نہ اپنے تھو مرد پ (پیم پیدا کے) مارگ کو پراپت کر سکے گا۔ پُر انوں کے نیز و دھ کرنے پر اُس اس سمنے پر کچھ بھی نہ کھانا (ارتحات ہر سمنے اس سے ہیلے ہی پُر ان ایمیس کی ودی سے اس کرنا) تب ہی ارتحات اد پر یکھت پروافوں کے ودی کو جان کر ایمیس کرنے پر میں نے سوہم پد۔ پر اتما کا مارگ پر اپت کی۔

پُون تر پُران سو مئی و چھوٹم
ریہلیت روڈم شرکھوں تاریں
دھیمیہ بیلہ مو اٹھ کھم آدھ کیاہ مو تکم
تے کنہیں پُون تر تما کوئے پُران (۳)

میں تے پُون اور پُران ایک سماں دیکھا۔ چھوٹم میں مرسے پاؤں
تک مل کر رہا جب کہ جھے دھیمیہ ہی بھول گیا۔ تو شیش کیا رہا۔ نہ تو قہیں
پُون ہی رہا نہ تو کہیں پُران ہی۔
ویا کھیا۔ میں نے پُون اور پُران کو ایک ہی سماں دیکھا۔ یہ پُرانا
دایریہ سے شرکھوں مرسے لیکر پاؤں تک مل کر پھر تے رہا۔ پُران ابھی اس
کھستے کھستے پُران دایریہ کھتے ہیں کر میں نے گرید و اس میں
تب شیش کیا رہ گیا۔ ارتحات پھر نہ تو کہیں پُون ہی رہا اور نہ تو کہیں
پُران (پر ماخانے بیس وقت بھٹک شرکھوں کے اندر سینکڑوں نہ ہے
کہ سماں کھھوں شرکھوں میں اور اٹھ کر رکھا تھا اب میں جھیٹی پکھی کے
چھانپے ویگ سے ان سب کو تڑک رکھا۔ اس پر کار
ھم جھما نہ روں کے رسمیہ کر جانے والا وہ دایریہ پرشی اپنے اس شرکے
ناش ہونے پر سارے اور اٹھ گیا اور اٹھ گتی کے دوارا پرم دایم
ہی چھپکر امرت یہم میں مل گیا۔ (ایتریو اپنیشاد ۲/۱۵)

پُران سیتی لے بیلہ کرم
و ابھی اس تھمونم نہ روڑنی شائے
کا یش افڑ سو روی و چھم
پائیں پوڈم کڈسیں گرائے (۴)

جب کر میں نے پُران دایریہ کو ابھی اس سے اپنے ساقھے لئے لیا۔ اس
ابھی اس نے میرے دھیان کو سہنے کھلتے کوئی سماں ہی نہ رکھا۔ کیا کے بیتر
ہب ہی چھر دیکھ دیا۔ اپنے جھوٹا کو چھت دھی کر دی اور (جیسے مرنے
کا) شک ہٹا دیا۔

دیا کھیا۔ جب کر میں نے پُران دایریہ کو بھائیتہ دیدہ پور دک
تیر اٹھ کر کے اپنے ساقھے لئے کیا۔ اس پُران دایریہ کے ابھی اس نے میرے
بھی سخنے ہوئے دھیان کو رہنے کھلتے کوئی سماں ہی نہ رکھا۔ ارتحات
یہ دھیان آخر مصروف میں مل کر لے ہو گیا اور میں نے اس اپنے دھیمیہ میں
سینکڑوں جھنوں کے تھوڑے شرکھوں میں اور اٹھ ہیں کا رسمیہ سب کھم
تک مل کر رہا جب کہ جھے دھیمیہ ہی بھول گیا۔ تو شیش کیا رہا۔ نہ تو قہیں
جھنوں میں اور اٹھ ہونے کی چھت دھی کر دی اور پرکر تر بندھن سے چھٹکارا
رکے آواگن ارتحات جھیٹے مرنے کا شک سب کچھ ہٹا کر اس کا شودھن کیا
دایریہ سے شرکھوں مرسے لیکر پاؤں تک مل کر پھر تے رہا۔ پُران ابھی اس
کھستے کھستے پُران دایریہ کھتے ہیں کر میں نے گرید و اس میں
تب شیش کیا رہ گیا۔ ارتحات پھر نہ تو کہیں پُون ہی رہا اور نہ تو کہیں
پُران (پر ماخانے بیس وقت بھٹک شرکھوں کے اندر سینکڑوں نہ ہے
کہ سماں کھھوں شرکھوں میں اور اٹھ کر رکھا تھا اب میں جھیٹی پکھی کے
چھانپے ویگ سے ان سب کو تڑک رکھا۔ اس پر کار

و اونچ گڑایا پانس و چھم
و انس ڈیسھم سورہ رنگ و سُس
دھیانس اندر دم دم میلس
گو فن تر و دم مو شارست پر (۵)

میں نے اپنے آپ میں دایریہ کی ہی حرکت دیکھ پائی۔ دکان میں

سب ہی رنگ کے مستویں دیکھ پائیں۔ میں کہن کہن دھیان میں ہی رہن کر قری رہی گنوف کرنے کو اکھوں کر کے جیت لیا۔

پُران کو اوپر کے اور دپر نے کا پٹھر چھوڑا۔ اناست کو بھسٹم ہی کر دالا۔ میرے میں شیش کچھ بھی نہیں رہا۔ (ارتحات پنجھ بھوت آنکھ شریبر کے مستویں (پُران ہوتے دیکھ پائیں (ارتحات بندریاں اپنے اپنے بندریوں کے ارتحاد میں درت رہی ہیں) میں تو خون کرنس آنکھ کے دھیان میں ہی رہن کر قری رہی اور (پُران سے اپنے پوتے ہوئے کامیں تھے۔ شیخ۔ اوش۔ شکھ۔ ذکرہ بورمان۔ آپمان) سب ہی گنوف کرنے چاروں اور سے سما جانے والا کھوں ڈالا۔

پُران۔ کوار کھوں ڈالا۔ جیسے سب اور سے پُران پُرانے پُرانے مہیت دے سکرے میں نانا پُر کار کی بندیوں کا پانی آ جاتے پُر کجھت ماتر بھی اُس کو چلامان نہ کرتے ہوئے اُسی میں سما جاتے ہیں اُسی پُر کار جس پُرش میں ساٹے دشے کوئی بھی وکار اپنے نہ کر کے اُسی کی شانستی بھنگ کئی بنا ہی۔ اُس کے اندر سما جاتے ہیں اُسی کو پرم شانستی ملتی ہے۔ دیشیوں کے کام و اے کوئی ہیں (دیگنا ۲۷)۔

پُران۔ کھنک۔ پُریچک کو رُم

۶۴

از اہلش بھا پیدھ پر کنی و تھا۔

کنہس تو موئم سوئے چھم کتھا (۶)

میں نے پُران۔ کھنک۔ پُریچک کیا۔ پُران کو اوپر کے اور راستہ پھوڑا۔ راست کو بھسٹم کر دالا۔ شیش پنجھ بھی نہ رہا۔ وہی یہ میرا بات ہے۔

گلگنس بھو تائش شو یہہ دیو نھم
رُوئس لھب نہ روزنس شائے
سُور بھر کے پر بھاؤ دشمنے زو نم
زُول۔ گو تھلس سیت میلت کیا ۵ (۷)
جن وقت کہیں نے ٹکن اور بھوئل میں بشو کو ہی سخت دیکھا

د جنے پلنے کا تھا بہمہ ویلے کے تتو و دھم پورا۔ ایک اس سادھا ایسا وہ بھائی سے سارا دشمنی جان لیا۔ زلہل کے سانحہ مل کر لئے ہو گیا۔ اپنے ہر دیے میں دھارن کیا اور (پیرم روپی شمش رست کے) گنگا جن سے اپنے انتہ کر کوئ اور من کے سارے کامنا آدھ و سناوں کے میں کو اچھی طرح (نادم ارتھات) مانچ کر صاف اور شدھ کر ڈالا۔ ایسا کرنے پر میں نے اسی دبیہ میں جیگن مکت پدوی پر اپت کی رور آوگن روپ جنے مرنے والا یک راج کا بھئے آدھ سے آت تک سب ہٹ گیا روا بیک پر بہم پر ہم شوکی پان ارتھات اپا سنا کرنی رہی (اس داکیہ میں ورنت گنگہ جن کو آپ ادھیا کے داکیہ ۳۔ ۵ میں پڑھو کر چاہیں۔

ادم کار شری پر کیوں زدنم
سب شکد پر شری۔ روپ۔ رس۔ گندھت
آتم سروپ سوپانے اد سم
پیرم بر ت دو روم شیرس پیٹھم (۴)

شدر۔ پر شر۔ روپ۔ رس اور گندھت کے سہت اپنے شری پر کو کیوں ادم کار ہی جاتا۔ شری کے بیڑ آتم سروپ بھی وہ آپ ہی تھا۔ پرم تتو کو مستک پر دھارن کیا۔

ویا کھیا۔ شدر۔ پر شر۔ روپ۔ رس اور گندھت کے تھات چکشو۔ شوت آدہ گل بن یندیاں وارک آد کرم یندیاں تھامن اپنے کر کوئ کے سہت اپنے شری کو کیوں ادم کار ہی جاتا اور اس میرے شری کے بیڑ پر کاشت کرنے والا آتم سروپ بھی دھی ادم کار پر بہم آپ ہی سہت تھا جو کچھ بھی پر اپت کرنا ہوتا ہے اس پرم تتو کو سادھ یوگ میں سہت ہو کر اپنے مستک پر دھارن کیا۔

اُس وقت رود کو رہنے کے لئے کوئی سخاں ہی نہ رہ۔ پھر میں نے سوریہ کے پر بھاؤ سے سارا دشمنی جان لیا۔ زلہل کے سانحہ مل کر لئے ہو گیا۔ ویا کھیا۔ جس وقت کہیں۔ پسیا کرنے کرنے یوگ میں سہت ہو نے پر آکا ش اور پر بھوی ارتھات سارے تر ہوں میں پر مرم شوکو ہی سہت دیکھا۔ اسی وقت شریز کے پر کا شک آتماروپی سوریہ کو رہنے کے لئے کوئی سخاں ہی نہیں رہا۔ ارتھات جو آتم بھاؤ گل کر پر ماتم سرود پر ہی ان گیا۔ پھر میں نے اسی پر بھا ق روم روپ سوریہ پر کا ش کے پر بھاؤ سے یہ سامان و قسمی جگلت گیا۔ سے پیمان ڈالا سمجھو کر یہ زلہ میں جو آتم تھل۔ ریھات اپنے مول کارن بہم تتو میں ہی مل کر لئے ہو گیا۔

پس مال۔ اس داکیہ میں (زوال) یہ شکد جیو آتم کے لئے پر بھا سخت ہوا۔ تا سوریہ کے بھائیتے حاصلے شری دل میں بیک اور الفتہ (دیکھو گیت۔ ہے شنک بھا ش) پر کر تے گنو ہے شری میں باندھے جانے کے کارنا آتما کو جیو۔ کھترگہ اور جیو آتما کہتے ہیں۔ دھی پھر پر کر تے گنو ہے مکت ہوئے پر پر ما تاروپی بنا کر تکے دھما بھارت شانہ پر ب (۵)

گور کٹھہ ہر دیس منزہ بگ رزم

لگ۔ زل ناوم تر تر من

سو ہمیہ زیون مکنی پر اوم

یم بھئے ٹرم پولم اکھ (۶)

گور دکی بات ہر دیس کے بیچ ایسی پکڑی۔ گنگا مل سے تر اور من کو مانچ ڈالا۔ اسی دبیہ سے جیون مکتی پر اپت کی۔ یم کا بھئے ہٹ گیا اور ایک کی پان کر تے رہی۔

ویا کھیا۔ میں نے گرد چارج کے کئے ہوئے من اور یندیاں پر

پر بیان۔ سب بیڑیوں کے داروں کو روک کر اوہ مرن کو ہر دئے میں
نیز ودھ کر کے ارتھات سن کلپ ڈکاب سے رہت ہو کر اور اپنے پرانوں
کو مستک میں سفہاں کر کے معاڑھ یوگ میں سخت ہوا سادھک اوم اس
اک اکھر روپ برم کے سروپ کا لکھیہ کرانے والے ادم کار کا اچازن کرنا
ہوا اور جھی پرمیشور کا چھتن کرتا ہوا بھ پُرش شریر کو تیاگ دیتا ہے اُنہی
پرم گتی ملتی ہے (گیتا ۱۱۲) (۱۱۲)

کو سُم باغش ایسو تھے اُشن

پڑھائے من تہ اُشن پڑا د

مُرُوپ درشن چھو تھوئی اُشن

کوت چھوئی گڑھن پکن ترا و (۱۰۰)
میں کوسم کے باغ میں گھستے لگی ہوں۔ یہہ تھا رام بھروسہ کر کے
تو بیتر گھستے کی پڑا پتی کر۔ اُدھر گھستا ہی مُرُوپ کا درشن کرنا ہے کہاں
تھے جانے۔ چلنا چھوڑ دے۔

دیا لھیا۔ میں سادھیوگ میں سخت ہو کر اپنے ہر دئے روپی کوسم
کے باغ میں گھستے لگی ہوں۔ یہہ تم کو اپنے من اور پر شادت پر بھروسہ
سے تو تم بھی رپا۔ سنا کر کے سادھیوگ میں سخت ہو کر اس اپنے بیتر والے
کو سیم باغ میں گھستے کی پڑا پتی کر اس کے بیتر گھستے یہہی تم کو آتم مُرُوپ
برم کا ساکشات کار پر اپت ہو گا۔ ہی مور کہ اس امانت پھل کے باغ
تیاگ کر کہاں تم کو جانا ہے تم اس اپنے ادیانارگ میں چلنا چھوڑ دے

پر بیان۔ اپنے ہی بیتر سخت اس بھروسہ کو سدا و سروہ دا جاننا
چاہیے۔ کیوں کہ اس سے برفھ کر جانے یوگیہ تر دُسر اکھی ہمیں ہے۔
بھوکتا (بھیو آٹما) بھوکیم (جھڈوگ) اور اُن کے پیر ک پرمیشور۔ ان تینوں کو

چان کر منش سب کچھ جان دیتا ہے۔ اس پر کار بیٹھن بھی دلایں بتایا ہوا ہے
بہم ہے (شوتا شوترا مپندر ۱۱۲)

واکھ سد شہودت موکھ سیم

سوکھن ڈیھم روزس شاہے

دھن اندر اشنا دھن

بندھ بیلہ نیھم میھم تھم

اپادیوں سے گھٹ ہوئے پر داکھ اسدا میرے مانکھ پر بیھی۔ تب

میں نے شکھ کو رہنے کا سخاں دیکھا۔ دکھ کے اندر بندرا میں بیٹھا میں
پڑا گیا۔ بھی جب وسیرت ہو کر پھیلنے لگے پھر داکھ میں بھی میٹھا پن آگیا۔

ویا کھیا۔ راگ تھا انہی کروں کے سروہ اپادیوں سے تھکت
ہوئے پر بھر داکھ سدی میرے مانکھ پر آکر بیھی۔ تب پھر میرے ادھمک

شکھ کو اپنے آپ میں یہنے کا سخاں دیکھ پایا۔ اور اس سے ناروپیا اور گن
کے دکھ میں سو شپتی بندرا کے او۔ تھا کا پرم شکھ روپ بھا۔ ہونے
لگا جب کہ شجھے اس تک بُرے تھے بہم گیان میں وسیرت ہو کر پھیلنے لئے تب
پھر داکھ دافی میں بھی میٹھا پن آگیا۔

منش ستی ملتے گنڈم

چتن رُم چو باری دگ

پر کرچ سکتی یہتھ تو قلم

سُرہ مہ کو رُم نُم و تھہ (۱۱۲)

من کے ساتھ من کو یا عوہ ڈالا۔ چت کی چاروں اور سے رگام
پکڑی۔ پر کرنی کے ساتھ پُرش کو نہیں لیٹا اور میں نے اس کو گیان میں

لایا اور مارگ کو پایا۔

ویا کھیا۔ پیر نے اس اپنے سنکلپ و کلیپ آتمک من کو اسی اپنے من سے درٹھ بھگ پڑ کر کے باعث دیا اور چوتھ کو چاروں اور نکل والے میں اپنے آتمک چیزیں روپی دگام میں دش کر کے مفہوم پڑھنے کے لکھا پڑھ کو (ارتحات اپنے آپ کو) پر کرنا لگوں کے سنگ میں نہیں لیٹا۔ کھوج اور دچار کر کے پر ماتا کے سر روپ کو ہیجان سے جانے میں لایا۔ ایسا کرنے پر پم پد کے مارگ کو پایا۔

پرمان۔ من کے درٹھ بھگ پڑ کرنے میں من ہی سُرخ ہوتا ہے۔ ترشنا روپی گواہ سے کپٹے ہوئے سنا سندھ میں پڑے ہوئے بھوروں سے قبیریں بھلتاتے ہوں کے لئے اپنی من روپی ناد کی ذریسے (ہو اپنڈش) کا ریہ ارتحات ہمیسے کے اور کرن ارتحات یندھوں کے کرتا پن کے لئے پر کرتے کارن کی جاتی ہے اور مسکھ اور دھکوں کو بھوگنے کے لئے پرش کارن ہکا جاتا ہے۔ پرش پر کرتے میں سچعت، پر کرتے کے گنوں کا اپنے بھوگ کرتا ہے اور پر کرتے کے گنوں کا یہ سینیوگ ہی پرش کو بھلی برتی یو نیوں میں لپیٹ کر جنم لئے کے لئے کارن ہو جاتا ہے (گیتا ۲۱/۲۰)۔

کامن سنتی پر کئے نو برم
کر دھس و دتم پردن فیش
کو بھس۔ مونہمن پردن تردم

ترشنا رجم کیس خوش (۱۱)
یہ نے اس کام کے ساتھ پرورتی نہیں لگائی۔ کر دھن کو یون سے ہی مٹا دیا۔ لوگہ اور موہ کے چون ہی کلٹے۔ ترشنا ہٹ کئی اور میں آندت ہو گئی۔

ویا کھیا۔ میر نے کمی بھی دشیوں کے آسکتی میں پڑ کر اس کام روپی شتر کے ساتھ اپنی پرورتی نہیں کی اور کر دھن کو یون سے ارتحات انتہ کرنوں کے دش کرنے اور سو وچار ارتحات آتم دچار روپی۔ یون کے بل سے اندر ہی مٹا دیا۔ تھا لوگہ اور موہ کے اُپن ہونے پر ان کے آگے بڑھنے کے پر بن کاٹ ہی دلے ارتحات لوگہ اور موہ کو اُپن ہونے ہی نہ دیا۔ ایسا کرنے پر آپ ہی آپ ساری ترشنا ہٹ گئی۔ اور میں پرم آندھیں مگن رہی۔

پرمان۔ یہ کام جو سب لوگوں کا شتر و سے جس کے نہت سے جھوٹوں کو سب اُز تھوں کی پلٹتی ہوئی ہے دہی یہ کام کمی کارن سے بادت ہوئے پر کر دھن کے روپ میں بدل جاتے اس لئے کر دھن بھی ہی سے۔ تھا یہ کام ہٹ کھلنے والا پیٹھ ہے۔ اس لئے ہما پا یا پڑھے۔ یکوں کر کام سے پیڑھت ہو متنش پاپ کرتا ہے اس لئے یہ دیری اور شر و بھی سے اور شنا جاتا ہے کہ ترشنا ہی اس سے یہ اموک کا ریہ کر دالا ہے (گیتا ۲۱/۲۰ شنکر بھاش) اس کے بعد ادھیاے ۹ و ۱۰۔ اور گیتا ۲۱/۲۰ اور گیتا ۲۱/۲۱ میں پڑھ کر کام کر دھن تو بکد کی اپنی اور دش کرنے کو دجا رہیں۔

منس گر کارے شرج یون ٹھ کوئی ان ٹھوم

توہ کوئی بل گوم کر مس کرئے

آگر جاتھت امرت زل چو ٹم

بشوئے من بگوم یم مس پرستا (۱۱)

سوکرت آن کھانے سے میرے من کو سنا سار بھاونا کے سنکلپ کا شک ہٹ گیا۔ اُسی کابل پر اپت ہو کر میں تے (ادھیاے آتم روپ) کریا کی پھر میں آدھار پر ہٹنکر میں نے امرت جل پیا۔ من و رشت ہو کر بشوئے

چن بھی لیا اور اسی ایک کو مان بھی لیا۔
پرمان۔ شم۔ دم۔ تپ۔ پھر تنا۔ شانقی اپنے کرنوں کی سر لتا۔ تھا
اڑھیاٹے گیاں اور وگیاں۔ شاستر کے وچوں میں دشواں۔ یہ بہن کے
سبھاوا ک کرم ہیں (لکھتا ۱۸)

کائیں اندر رو دم اڑت
نیا ایس تھوونم ترواری کی شائے
پائے کنہیہ لوم نولے چھس کرت
زائیں نہ آئیں ملکم ناد (۱۴)
و (پر بہم) میرے کایا کے بیتر سخت ہو کر اٹھرا۔ نیائے کے
لئے چاروں اور سے میرے کو کھلا سخنان رکھ چھوڑا۔ جب کوئی ایلے
ارفات پہنچ نیائی تو پھر میں پر بہم میں لگن رہی نہ تو میں پیدا ہی ہوئی
اور نہ تو رستا میں آئی۔ نام تو اگ گیا۔

ویاکھیا۔ وہ پر بہم میرے کایا کے بیتر اتم روپ سے پر دیش
کر کے سخت رہا اور پھر اپنا نیائے کرنے کے لئے تک میں اسی کایا کے بیتر
کو انہوں نے۔ میرا سر روپ کیا ہے ایسا نیائے کرنے کے لئے چاروں اور
سے کھج اور پھر کرنے کا کھلا سخنان رکھ چھوڑا۔ جب نیائے سے
ارفات بندی گیاں اور میں اور دوسرے یند بیویوں سے اور شاستروں کو
پڑھو اور میں کرنا پڑتا پڑتا تو سکا گیا۔ وگیاں ورن کرنے سے
کروہ پرمانا ایسا ہے ویسا ہے۔ اس طرح اس کے پر اپنی کرنے کا
کوئی ایلے نہ یادیا۔ ارفات کوئی پہنچ ہی نہ یادی۔ تپ اس پرمان دیو
کی پر اپنی کرنے کے لئے وشنود اپنے کرنوں نے فرست اجھی کا چلتا
کر کے دھیاٹ اور بھکتی دوارا اتر پر بہم میں لگن رہی۔ جب دھیاٹ کرنے

ہو گیا اور میں بھی پر بہم میں لگن رہی۔
ویاکھیا۔ سکرت ارختات سماں کا آن (کیسا) جو ایسا ہے۔ وغیرہ

کا نہ ہو۔ پھر جلسہ کا نہ ہو۔ لوٹ مار کا نہ ہو۔ ایتادہ (پھر وہ آن کیسا
ہو) جو محنت سے کیا ہوا ہو یا سادھک نے بکھیا کر کے لایا ہو۔ وہ بھی
کیسا ہو جو اس دان دینے والے دلتے محنت سے شدھ کیا ہو۔
ایشوری کہتی ہے کہ ایسا ہی آن کھانے سے میرے من کو سنا ر بھاونتا
کے دشیوں والا سنکلپ کا شک ہنٹ گیا۔ مئی سے پھر میرے شریب
میں آتم بل پر ایت ہو کر تب ہی میں نے پرمانا کی سادھنا کی۔ سادھنا
کرتے کرتے آتم ساکشات کار کے گول آوان پر بیٹھنے کر میں نے آتم
سر و پ آند کا امرت شے جل پیا اور من سرفنا و شدھن کر پڑھے شہر
کے ساتھ ہی ٹے ہو گیا اور میں بھی اس بہم کی پر بہم میں لگن رہی۔

زخم پر اوت کرم سو و م

دھرم

پولم سو شے اچھم سست

نیترن اندر پر بہم دا رم

ڑو رم پر مو غن ای ہوی اکھا (۱۵)

جنم کے پر اپنی ہوئے پر بہم نے اکرم سادھا۔ دھرم کو نالا میرے
میں وہی سنتا ہے۔ نیتروں میں پر بہم دھارن کیا۔ اسی ریک کوچ چن
یعنی لیا اور پھر اسی کو مال بھی لیا۔

ویاکھیا۔ جنم کے پر اپنی ہونے پر بہم سبھا و جیز کرم کو
سادھا اور دھرم کی پالا کرتی رہی میرے میں وہی دھرم اور کرم سے
پر ایت ہوئی۔ اسکے سنتا ہے اور اپنے نیتروں میں سارے پر انبوں کو
ایک سے جان کر پر بہم دھارن کیا اور اسی ایک یکتا والے کو کھوڑ دھار کر کے

لئی مشریعہ ریاست

کو بیوک ارتحات اکٹھا کر کے بھیس ہی کر دلا۔ سینکڑوں مجنوں کے پاپوں اور دسناوں کی نیورتی ہونے پر خیل پر بندھی پریاپت ہوئی۔ آئتا کا یعنی اپنے آتم سرددپ کا پورا نشیخ ہونے پر گیات ہوا کہ دنیا پر لوک میر کون تھا اور ہمارے سیار میں کون آئے۔

پیر بمال۔ زاد جنک اپنے گور دیلو سے کہتے ہیں ہے گور دیلو تتو
گیان عاصل ہوتے پر میں پورن شانتی کو پریا پت ہوا ہوں اب جھنے کوئی
شک ہی نہیں رہا۔ اپنے سروپ کی ہمایں استھت ہونے سے جھو کو
اپ دھرم کھا۔ ادھرم کھا۔ شجھ اور اشجھ کھا۔ بھوت کھا بھوشت
کھا۔ در تان کھا۔ سوپن کھا۔ سو شنی کھا۔ جاگرت کھا۔ ترما کھا
اور بھٹے کھا۔ دور کھا۔ نزدیک کھا۔ باہر کھا۔ بھیتر کھا۔ تھھول
کھا۔ سوکشم کھا۔ مرتبو کھا۔ جیرون کھا۔ جگت کھا۔ سنا کھا
کرم کھا۔ اور سادھی کھا۔ (ذری اشٹا) وکر گیتا آتم و تراشت اور جھوٹ
مکلت اور تھا۔

شہزاد نے دھن کیا ہے سن کرے

چلتس رٹ ترکری وگ
منس تہ پونس ملوان کری
سہزرس هنر کر تیرنہ سنان (۱۸)
تیرنہ سنان اور دھیان کیا کرے گا۔ اپنے چت کی لکام کھینچ کر
کھنڈ (یعنی تہائے) من اور اپن کا ملاوٹ کر گیا پھر تم اپنے آتے
بجا اور ترکنڈیں تیرنہ سنان کر۔
و یا آئیا۔ ادھیا تک اپا سنان سے رہت اور دیا کے بیت سخت ہو
کام کر مولی میں بہت بہت پر کار سے درت کر تم کو یہ تیرنہ سنان (۱۹)

کریما - گریم - دھرم کوڑم
پرھن - نادم پنچی کاٹے

پاپن شوپرست بھسک کو رم
ستہ کمر، اور ہر نیت کم آئے
(کا)

میں نے کریا۔ شکریم اور دھرم کی پانٹا کی۔ تیر تھوڑی میں اپنی کایا
تھیں کیا۔ ملائیے پالوں کو اکٹھا کر کے بھاگ کیا۔ وہاں کون سعات۔ ۱
دن آئے۔

ویا کھیا۔ میہار پر میور کو پہاڑتی کرنے کے لئے جپ۔ دھیان۔ پرانے بھیساں زندگی کریا اور خاتم سادھنا کرتی تھی اسی اور سوچا و سے آپنے ہوئے تکوں کے دو اڑا سبب یہ میں بسوچا و ک گھم کرتی رہی اور دھرم کی پانی کرتی رہی لورتیر تھوڑی پر جا کر اپنی کھیا کا شودھن کیا۔ اس طرح سے سب پاول

سپند شکنی چت کے دوسرے روپ میں چھت ہے جو من کی یہ چھلٹا سے
وہ پر اکرتہ دا سنا سروپ اور بیٹے۔ اس چھلٹا کو وجہ سے ناش کرو
جو من چھلٹا سے ہوتا ہے وہ امرت کھلاتا ہے وہی تھنکی کھلاتی ہے
(ہمہ اپنیش) جب یہ من بابر دشیوں کا چھن کرنے لگتا ہے تب وہی
چت کھلاتا ہے (ہما بھارت شانہ پرب ۲۴۲) آہما کی نریفت۔ گیتا
۲۵/۸ تک پڑھ کر وجہیں۔

کلیس بل چھوئی مائیں زاگن

پرماںس بل چھوئی شبد سروپ

نہیں بل چھوئی نتو ود زانن

گیانس بل چھوئی آدانت تان

(۲۰) کیا کا بل ہے سب کے ساقہ پریم در شنکے تاک میں رہنا۔ پڑلٹ کا
بل ہے شبد سروپ۔ آیو کا بل ہے۔ تو کی ودی کو جانا۔ گیان کا بل ہے
سمے انت کا، رہتا ہے۔

ویا کھیا (۱) سب کے ساقہ پریم سے بلالا۔ پریم سے درتا۔ اب چیت
پریم سے کرنی۔ جس سے اہم بھاؤ بڑ جانے اور دوسریں کو کبھی شانقی ہو رہے
اور اپنے آپ کو کبھی شانقی آ جانے اس طرح سے من پر سن اور کفریہ میں
بل اپنی ہوتا ہے (۲) جو سب میں سارے متوبے جو بھی نہیں ہے۔ جو غیر
تر نہ بنا رہتا ہے دہی بھگوان کا مکھیہ روپ ہے اُسی کو سروپ لکھتے ہیں
و استو میں وہ سروپ نہایت ہے پر اس کا گیان کرنے کے لئے اس میں
نام نزولیش کیا جاتا ہے۔ وہ نام نزولیش کیا ہے۔ بھگوان کو پڑھتا کرتے
کے لئے ادم کا رجپ۔ شو۔ ناراین۔ وارسیدیو۔ کرشم۔ نام ایسا کے تمام
کا جپ بھگوان کی وید فرتوں سے استو قی کرتا۔ بھگوت یعنی دھرم جو

دھیان کون سا پرمار تھا کا لابھ کریں گے۔ تمہیں دشیہ و اسناؤں میں
گمن کرنے والے اس پسے چت روپی گھوڑے کی لگام درڑھنا سے مہبوب
پکڑے رکھی تھا کے من اور (پران) پران کا ملاوٹ کرے گا۔ تم پھر
آنہ سے پسے آتم سروپ امرت کنڈ میں گیان امرت جل کا تیر تھا سان کو
(جب من باہر بیندیوں کے دشیوں کا چھن کرنے لگتا ہے تب وہی چت
بن جاتا ہے اور جب بیندیوں کے دیا پار آر بیجہ ہونے لگتے ہیں۔ سانکھ
شاستر والے اُسی کو پران کہتے ہیں۔ سانکھ کار کا ۲۹۔ اسی کو سوائی
پرمانند جی نے یوں کہا ہے (بڑے ایک دُم روت من تے پران) اس کے بعد
اوھیلے ۵۔ وکیہ ۱۸۰ میں چھت کے سروپ کو پڑھ کر وجاہ کریں۔

پران۔ نہلے دھوئے کیا ہوا جو من میں بیل سائے

میں سد بجل میں ہے دھوئے باس نہ جائے

تیر تھ برت کر جگ مٹا ٹھنڈے پانی تھا

ست نام جلنے پہا کال جلت جگ کھائے (کبیر)

مذنس گن چھوئی چھل اس

چھن گن چھوئی گڑھن دُور

رچھوں گن چھوئی بو پھر جریش اس

رہ آتمس گن چھوئی نہ آسون لیف

(۱۹) من کاگن منکلپ دلکپ روپ چھلتا کا ہونا ہے اور چت کا گو
ہے (لاکھوں یوں) دور چلا جانا۔ جو کاگن ہے بھوک اور پیاس سے
پیر ٹرت ہونا۔ آہما کاگن ہے کسی نہ سمیں کا یعنی

پران۔ چھلتا سے رہت من کہیں بھی نہیں دکھائی دیتا۔ جیسے اگنی
کا دھرم گرمی کا پر چنڈے ہے اُسی پر کار من کا دھرم چھلتا ہے۔ بھی چھل

کہاں۔ سہہر نام ایتادہ کا یا نہ۔ ان سبہ شبدوں کو شید مردپ کہتے ہیں اس سے پرانوں میں اپن ہو کر سروپ ارتحات بھگوان کی پڑا پتی ہوئی ہے۔ یہی شید مردپ پران کا ہے۔ اس سے بن جتنے بھی شید ہیں جو کر ائمہ کرن بڑھی ایتادہ بیندوں کے ائمہ شاکھاؤں سے انت پر کارکش کوئی ہیں جیسا کہ (جذبہ اسے پل کی جھنے یا۔ اندھی کی لڑکی باہر کی بیاد = ایک شدھکھدہ اڑاہت ایک شدھکھدہ اس۔ ایک شدھکھدہ من ہے۔ یہک شدھکھدہ بھائیں بکیر (۲۳) آنکا بیل ہے تک وہی کر جاننا ارتحات جو آنک توپی ہے یہ ہے جو کوہ درس پر انیوں بیک جیسے ارتحات سب پانیوں کے آنکوں پر بھی آنا بھی لیتا (۲۴) یہیان کے پڑا پتی، بوجان پر وہ یگان آدے انت کا ایک ہمان بناہت ہے۔

کنہس پھی کیا چھوئی نڑن

مہوڑی کنہس نہ تر نڑن مڑا وہ
پت قریت چھوئی ستوی آٹن

ہوئی وڑن پھیش تھو۔ (۲۱)

یہ کچھ بھائیں ہے اس پر نم نے کیا چلے رہا پر ناچ کر تھس کچھ بھائیں بچھا گا
تم یہ رہنا چاچھوڑے وہیں لوٹ کر نے پھر وہیں ھستا ہے ہی بات یاد رکھ۔

ویاکھا کنہس پھی ارتحات انت (ادھھر) یہ کچھ بھائیں کی ہی ارتحات پر سارا جیا ریخت
سوپن کی وسو اور ٹنڈر ڈنگر کے سماں دیکھتے دیکھتے نڑن ہونے والا اوہ جیسا دیکھا سنا جانا

ہے نتو گیان ہر نے پر وہیں پایا جانا ایسا وہیں وہاں بیکاریں لاؤ کر کس کرے تم اس
سارا رہی کاماؤں کے اور ناچ ہیسم تھیں تو تھیں اس سارے کے نوہیں پڑا کچھ بھائیں

ارتحات ادھیا تم گیاں پر ارتحات کا لاخنچ کرے گا ہی نہیں تم یہ اپنا اور یا کے یہ ترہت
ہوت پر کار سے وہ تھے کاچھ چھوڑے دیں لٹھنے پر ارتحات ہمیں تیک کرنے

پر نم نے اسی میا ریخت سارو قی آوگن جنم و مرن میں بار بار گھستا ہے۔ یہی
میرا وہیں (گیان اپدیش) یاد رکھو۔

۱۱. پانچ کی ۳۴۵۷۔ ۲. پانچ: دیکھاں اور جیڑلے
(کوئی ۳۱۱۸۹ تک دیکھاں کر دیجیں)۔ لیکھاں
۳۷۹۱ ۲۰۱ ۲۱ ۲۰۲۱ (۲۴)

جب جیو کو دس کا سر پر دیجتا ہے
جب سر پر ادھنیہ موت دن رکتے ہوں۔

دوسرا: (بہت مردیں جیساں وہ جو سنت میں اور سنت سامنے جو بھکم دوں ہوں
وہ اس کے اور میتھیں کرنے کا نام بھرا رکھتے ہے۔ (وہی بھرا رکھتے ہے بھر جو جھیل
چھٹھیا ہے وہ ایک ایک چھٹھیا ہے) اسکے دلیوں کا آٹا شریک کے مدد پر زاری
ہے

جس کا بھرا رکھتے ہوئے وہ سرائے دلیوں پر وہیں ہوئے
اور کسی کا بُرُت بُرُت بُرُت بُرُت بُرُت ہے۔ اس کے ہر ایک رُم طاقت ہوں۔

وہ سرائے کا سیاں سیاں رہا۔
بھرا رکھتے سے کیا بُرُت گایے آمہا۔ لیا کرنا چاہیے؟ دل اپنے
وہ سارا آٹر کے انگوہ آجھا۔ ۲. سنتوں کا سنک ۲۷۳۱ اور
ایک نئی دلیوں دلیو جھا۔ دریوں کا دلیا۔ تھا اس کو دو بارہ

کھل جیساں۔
جیو کا نور و کس میں بھرا رکھی دلوں
دکھ